लेखक—

श्रीमती निरुपमा देवी

अनुवादक

कमलाप्रसाद राय शर्मा, बी० ए०

प्रकाशक—

सुभाष पुस्तक-मन्दिर

अवधगर्वी बनारस ।

प्रकाशक—
सुभाष पुस्तक-मन्दिर
बनारस ।

सर्वाधिकार प्रकाशक के आधीन

द्वितीय संस्करण] जुलाई १९५६ [मूल्य दो रुपया

मुद्रक—
दीपक प्रेस,
नदेसर बनारस ।

भूमिका

प्रस्तुत पुस्तक बंगला साहित्य की सुविख्यात उपन्यास लेखिका स्वर्गीया निरुपमा देवी की 'उच्छृङ्खल' नामक पुस्तक का हिन्दी अनुवाद है। निरुपमा देवी के उपन्यास अत्यन्त अच्छे दर्जे के हैं और इन्हें बालक, युवा, वृद्ध, स्त्री-पुरुष, छात्र-छात्राएँ सभी बेरोकटोक पढ़ सकते हैं। मानव-चरित्र को यथार्थतः चित्रित करना ही उपन्यास-कला की विशेषता है। मनुष्य हृदय की गहराई तक प्रवेश करने का सामर्थ्य रहने से ही चरित्र-चित्रण सुचारु रूपसे किया जा सकता है। इस पुस्तक में पाठक देखेंगे कि 'प्रेम' जगत् में एक अमूल्य पदार्थ है और सच्चा प्रेम मिलना भी दुर्लभ है। सांसारिक बन्धनों में दाम्पत्य प्रेम का महत्त्व अत्यधिक है और दाम्पत्य प्रेमके अभाव से गार्हस्थ्य जीवन नीरस हो जाता है। पाठकों को यह बात भी इस पुस्तक से मालूम हो जायेगी कि विवहित जीवन में भाग्यवान ही सुखी होते है नहीं तो अधिकांश विवहितों का जीवन किसी न किसी कारण से रसहीन एवं दुःखमय ही रहता है। दाम्पत्य जीवन में असफलता से स्त्री-पुरुष दोनों का ही जीवन कष्ट से बीतता है और उन्हें सदा बेचैनी बनी रहती है, शान्ति नहीं मिलती। किन्तु विवाह का मुख्य उद्देश्य तो गार्हस्थ्य जीवन को सुखी बनाना है। अतः यदि इसमें दुःख आ जाय तो समझना चाहिए कि दोनों के चरित्र में खराबियाँ हैं, या एक ही में त्रुटियाँ हैं। किसी न किसी प्रकार की त्रुटि के बिना दम्पती का जीवन नीरस हो ही नहीं सकता। जहाँ सच्चा प्रेम है, वहाँ दुःख आ ही नहीं सकता।

पतिव्रता रमणी किसी भी हालत में पति से नाराज नहीं होतीं। उनके लिए पति ही परम देवता है, एक मात्र गुरु है। सीता, दमयन्ती आदि स्त्रियों का आदर्श ही अनुकरणीय है। किन्तु परम दुःख की बात है, पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव से हमारे देश में दाम्पत्य जीवन में नीरसता आने लगी है और हम अपने पुराने आदर्श से विचलित होते जा रहे हैं।

इस पुस्तक में इन्दिरा का जीवन दुःख में ही बीत गया, यद्यपि पति पर उसका सच्चा प्रेम था। सच्चा प्रेम रहते हुए भी किस गलती से वह पति-सुख से वंचित रहीं और क्यों पति के लिए तड़प-तड़प कर उसे मर जाना पड़ा यह रहस्य है। इस पुस्तक के पाठ से युवक-युवतियों को अपना विवाहित जीवन सुखी बनाने में यदि रंचमात्र भी सहायता मिली तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूँगा।

वैशाख, शुक्ल १५ }
संवत् २०१२ } कमला प्रसाद राय वर्मा

१

स्कूल की छुट्टी हो गयी। महाकोलाहल के साथ बाढ़ के जल की भाँति छोटे-छोटे अनेक लड़के स्लेट-पुस्तकें बगल में दबाये मैदान में पहुँचे। मैदान छोटा-सा था, इस कारण वह खचाखच भर गया। खुले सोते की तरह स्वतंत्र वेग से नियम और शृङ्खला को तोड़कर सजीव आनन्द तरङ्गें समूचे मैदान में फैल गयीं। स्कूल में जिनके प्रताप से गाय-बाघ एक साथ जल पीते हैं और जिनकी लाल-लाल आँखों की उग्र दृष्टि के सामने उद्दण्ड लड़के भी थर्रा उठते हैं, वे ही पण्डितजी उनके सामने खेल का निरीक्षण करने के लिए बैठे हुए थे। परन्तु मैदान में लड़के उनको तृणवत् समझकर उछल-कूद मचाते हुए महाकोलाहल करते हुए नैतिक साहस की पराकाष्ठा दिखा रहे थे। कुछ लड़के तो सामने के अमरूद और आम के पेड़ों पर चढ़कर बन्दरों की तरह एक डाली से दूसरी डाली पर कूद रहे थे और पेड़ों के

नीचे खड़े लड़कों को चिढ़ा रहे थे। उनका यह चिढ़ाना वास्तव में पण्डितजी के ही लिए था, सहपाठियों के लिए नहीं। पण्डितजी चटाई पर बैठे हुए थे और उनके पास ही एक सुन्दर हुक्का भी शोभा पा रहा था। उनके सामने जो विद्रोह चल रहा था, उसपर उनका जरा भी ध्यान न था। वे शीघ्र घर जाने के लिए ही घबड़ाये हुए थे।

पास ही एक बालिका-विद्यालय भी था। उसकी भी छुट्टी हो गयी। लड़कियों का दल शान्तभाव से ही मैदान में आया। किसी तरह का हुल्ला-गुल्ला उनके कारण नहीं हुआ। लड़के खेल रहे थे और लड़कियाँ ध्यान से उनका खेल देख रही थीं।

थोड़ी देर बाद खेलकूद समाप्त कर लड़के मार-पीट करते और हल्ला-गुल्ला मचाते हुए विभिन्न दलों में अपने-अपने घरों को रवाना हुए।

बालक-बालिकाओं का एक सम्मिलित दल अलग खेल रहा था। इनका खेल आँखमिचौनी का था। सबको पारी-पारी चोर बनने का कार्य सम्पन्न न होने तक खेल समाप्त हो नहीं सकता। इसलिए इस खेल की समाप्ति में देर थी।

इस दल का सरदार था कुमुद। उसने यह विचार प्रकट किया कि यह जगह 'आँखमिचौनी' खेल के लिए ठीक नहीं है। अपने स्कूल के पिछवाड़े चलो, वहाँ ही यह खेल खूब जमेगा। किसी ने कोई विरोध नहीं किया, बिना चूँ-चपट के उसका अनुसरण किया। स्कूल के पीछे एक छोटा बगीचा था, पेड़-पौधे थे, झाड़ियाँ थीं, बायीं तरफ एक छोटी सी पोखरी थी, जिसमें बहुत ही थोड़ा पानी था। उसी बगीचे में खेल का स्थान नियत किया गया। कुमुद ने सन्दिग्धभाव से चारों तरफ देखा, क्योंकि वृक्षों

की आड़ से उसके मकान की सफेद दीवारें वहाँ से कुछ-कुछ दिखाई पड़ रही थीं। किन्तु अपने मन के भय को उसने किसी से प्रकट नहीं किया। वह अपने पौरुष को किसी के सामने नीचा नहीं दिखाना चाहता था। खेल शुरू हो गया।

मनीश नामक लड़का 'चोर' बनाया गया। इसीलिए वह अनू के पास बैठा हुआ था। अनू अपने छोटे-छोटे कोमल हाथों से चोर की आँखें बन्द कर रही थी, किन्तु मनीश था चतुर, वह उसकी अँगुलियों के भीतर से झाँकता हुआ सबके छिपने की जगहें देख रहा था और मुसकुरा रहा था।

हुकुम मिला। मनीश झटपट उठ खड़ा हुआ, दौड़ पड़ा। अनुपमा आग्रह के साथ उठ खड़ी हुई और देखने लगी। उसको 'बुढ़िया' बनकर बैठे रहने का दुःख मालूम हुआ। उसने सोचा क्या मैं दौड़ने में गिर पड़ूँगी, इतनी निकम्मी हूँ कि एक जगह चुपचाप बैठने का ही काम मुझे सौंपा गया है ?

खिलखिलाकर हँसती हुई दो लड़कियों ने आकर 'बुढ़िया' को छू लिया। मनीश उनकी परवा न करके कुमुद की तरफ दौड़ पड़ा। किन्तु कुमुद कब पकड़ में आने वाला था, इधर-उधर दौड़धूप मचाकर उसने भी आकर बुढ़िया को छू लिया। उसके स्पर्श से अनुपमा गिर पड़ी और रोनी सूरत बनाकर उठ खड़ी हुई। कुमुद ने उसकी पीठ पर एक चपत लगा दी।

इसके बाद सुरेन ने भी बुढ़िया को छू लिया। बाकी रहा प्रमोद। वह बड़ा ही सावधान था। वह कहाँ जा छिपा था, इसकी कुछ भी जानकारी मनीश को नहीं थी। वह सूखे चेहरे से इधर-उधर ताकने लगा। सुशीला ने देखा कि इस बार भी मनीश चोर ही बना रह जायगा। मनीश से वह बहुत ही

डरती थी। क्योंकि कमजोर समझकर मनीश उसको ही अधिक तङ्ग किया करता था। सुशीला ने चुपके से हाथ से इशारा किया। मनीश जान गया और एक झाड़ी की तरफ दौड़ पड़ा। उसी क्षण उस झाड़ी में से हँसी का फव्वारा निकल पड़ा। प्रमोद लज्जित चेहरे से निकल पड़ा।

'रानी' अनुपमा ने देखा कि यह तो बड़े ही अन्याय का काम हो गया। उसके सामने ही यदि ऐसी अराजकता चलेगी तो 'रानी' पद की मर्यादा ही क्या रहेगी? उसने प्रमोद के पास जाकर उसका हाथ पकड़कर हाँफते-हाँफते कहा—"ऐ छोटे भैया! इसी सुशीला बहन ने मनीश को हाथ के इशारे से उधर तुमको दिखा दिया था।" छोटे भैया का मुँह लाल हो उठा। षड़यन्त्र! यह विश्वासघात! झट से अपराधी के गाल पर जोर से तमाचा लगाते उसे देर न लगी। विश्वासघात करने वालों की सजा ऐसी ही कड़ी होनी चाहिये।

प्रचण्ड विद्रोह फैल गया। संसार में सर्वत्र यही नीति काम करती है। बल से हो, छल से हो, जैसे भी हो, सहयोगी या शत्रु को परास्त करना ही परम पुरुषार्थ है। सिकन्दर से लेकर मोहम्मदगोरी, नादिरशाह आदि सभी वीरों ने ऐसे ही उदाहरण उपस्थित किये हैं। कितनी ही वीर जातियों ने, विश्व-विजय में यही दृष्टान्त रखा है। और सर्वत्र ऐसे ही उदाहरण अब भी दिखाई पड़ते हैं। मार खाकर अपमानित होकर सुशीला घर को चल पड़ी और सभी लड़के लड़कियों ने प्रमोद को 'अन्यायी घोषित किया। सबकी ओर से एक साथ तिरस्कार पाकर प्रमोद घबड़ा उठा। कुमुद ने अनू का कान मलकर कहा—"तुमने केवल झगड़ा लगाना सीखा है। जाओ, कल से तुमको कोई दल में

न लावेगा।'' अनू ने भी रोते-रोते कहा—''रानी का पद पाने यही लाभ है ?''

अन्त में सबने मिलकर सुशीला को समझाया और सान्त्वना दी। अभय-वचन पाकर सुशीला घर लौट गयी। प्रमोद ने भी भले लड़के की तरह अपना अपराध स्वीकार कर लिया, क्योंकि न्याय के ऊपर चिरकाल से शक्ति की ही प्रधानता स्वीकृत होती आयी है। अतएव उस शक्ति को स्वीकार करना पड़ेगा। खेल आरम्भ हुआ प्रमोद को अपने कर्म के प्रायश्चित रूप में चोर बनना पड़ा।

थोड़े देर बाद बगीचे में से एक युवती निकल कर आयी और क्रुद्ध स्वर से बोली—''कुमू, प्रमोद, क्या घर न चलोगे ? खेलते रहने से ही पेट भर जायगा ?''

यह युवती इनलोगों की बड़ी बहन थी। कुमुद ने कहा—''जीजी इस बार प्रमोद चोर बना है। अनू ने डरते-डरते बहन का हाथ पकड़ कर कहा—''माँ शायद बिगड़ रही हैं बहन ?''

क्यों न बिगड़ेंगी ? तुमलोगों की अक्ल कैसी है ! स्कूल की छुट्टी हो जानेपर तुमलोग नहीं आये, तो छत के उपर से देखा कि तुमलोगों का खेल पिछवाड़े की तरफ हो रहा है।'' मनोरमा लोलुप दृष्टि से खेल देखने लगी।

एक साल हुये मनोरमा का विवाह हो चुका है। विवाह के बाद उसकी पढ़ाई बन्द हो गयी है। चौदह वर्ष की अवस्था है। मन चंचल है, खेल देखने के लिए चंचल हो उठता है, फिर साथ ही संकोच भी होता है।

सुशीला ने कहा—''मनो बहन, खेलेंगी ?''

मनो ने संयत भाव से कहा—''नहीं बहन !''

"खेलो न, यहाँ कोई देखेगा नहीं।"

"हमारे मकान से यदि कोई देख ले?"

"कोई भी न देख सकेगा। तुम आओ।"

कुमुद के अनुरोध से मनोरमा के धीरज का बाँध टूट गया।

पोखरी के किनारे ही एक अच्छी झाड़ी है। सुशीला उसी में जाकर छिप गयी। इस बार फिर मनीश चोर बना। प्रमोद की ही करनी से मनीश को चोर बन जाना पड़ा। मनीश ने गर्व के साथ कहा—"अच्छा कितनी देर में यह अवस्था बदलती है; देख लेता हूँ? कुछ भी देर न लगेगी।"

किन्तु रानी ने जब उसकी आँखों पर से हाथ उठा लिये तो उसके नेत्र चौंधिया गये। क्योंकि इस बार रानी ने विशेष दक्षता के साथी अपनी रानीगिरी का परिचय दिया। कौन कहाँ जा छिपा है मनीश ने बिल्कुल ही नहीं देखा। वह चारों तरफ तीक्ष्ण दृष्टि से ताकने लगा। देखते-देखते उसे एक-एक झाड़ी के कुछ पत्ते कुछ-कुछ हिलते हुए मालूम हुए। वह प्रमोद के अनुसन्धान में उसी तरफ दौड़ पड़ा उसके दौड़ते ही उसमें से सुशीला निकल पड़ी और दूसरी तरफ जोरों से भाग चली। किन्तु अचानक एक पेड़ की जड़ से ठोकर लग जाने से वह गिर पड़ी। पोखरी का किनारा पास ही था जो ढालू था। लुढ़कते-लुढ़कते सुशीला जाकर पानी में गिर पड़ी। साथ ही साथ मनीश, कुमुद और प्रमोद भी पानी में कूद पड़े। अच्छी तरह तैरना नहीं आता इसका ख्याल ही इनलोगों को नहीं रहा। यद्यपि पानी बहुत ही थोड़ा था, तो भी बारह-ग्यारह वर्ष के लड़कों के लिए उतना ही काफी था। बड़ी कोशिश से किसी तरह वे लोग सुशीला का उद्धार कर करारे के पास ऊपर ले आये। मनोरमा

ने उनको सहायता की तो एक-एक करके सभी ऊपर जमीन पर आ सके। तब तक अनू और मृणमयी डर के मारे काँप रही थी। अब सभी एकत्र होकर सुशीला को सान्त्वना देने लगे। वीर-गण सुशीला का उद्धार करने का गौरव गाने लगे। अनू और मिनू मुग्ध भाव से उनकी यह वीर-श्लाघा सुनने लगीं। सुशीला को यह सब अच्छा नहीं लगता था। वह सोच रही थी कि घर जाने पर न मालूम आज माँ क्या कहेंगी, कैसा तिरस्कार करेंगी? इसी चिन्ता में उसका मन उदास हो गया था। रोते-रोते उसने प्रतिज्ञा की कि अब कभी मनीश भैया के साथ न खेलूँगी।

इतना मनमुटाव होने पर भी, सभी ने अन्त में यही समझौता किया कि घर जाकर कोई भी इस सम्बन्ध में माता-पिता आदि से कुछ भी न बतावेगा। इसके लिए सभी ने कालीमाई की शपथ खाई।

दैवकोप से इस संकट-अवस्था में पड़ा हुआ बालक-बालिकाओं का दल अभी निश्चिन्त भी न हो सका था कि उसी समय काल-रूपी विधाता के शासन-दण्ड की भाँति वहाँ एक युवक का आवि-र्भाव हो गया। उस युवक का आगमन देखकर मनोरमा ने धीरे से कहा—"अब क्या होगा भाई, बड़े भैया तो आ गये!" क्षण-मात्र में द्वन्द्व भूमि जन-शून्य हो गयी। विनोद कुमार के आने पर केवल रानी ही दिखाई पड़ी और वे केवल उसी को गिरफ्तार कर सके। परवाह न करने वाले वीरों में से किसी ने भी रानी की तरफ दृष्टिपात तक भी नहीं किया।

विनोद रानी को गोद में लिए घर पहुँचे तो उन्होंने देखा कि सुशील लड़कों की तरह कुमुद, प्रमोद भोजन करने को बैठे हुए हैं। मनोरमा चोर की तरह एक तरफ खड़ी है। माता

उसको तिरस्कार के स्वर में कह रही थी—"तू क्या समझकर किस बुद्धि से इन सबके साथ खेलने जाती है।" बड़े लड़के को सामने देखकर माता सम्हल गयीं, क्योंकि विनोद बहुत ही क्रोधी स्वभाव का था, गुस्से में आने पर सयानी विवाहिता बहन को भी कठोर दण्ड दिये बिना छोड़ नहीं सकता। विनोद ने क्रोध की हँसी हँसकर कहा—"ये सब तो यहीं हैं। अच्छा खालो तो देखूँगा।

माँ ने देखा कि डर के मारे इनका खाना मट्टी हो रहा है। उन्होंने कहा—"तू आज इन लोगों को कुछ भी मत कहना। ये फिर ऐसा काम न करेंगे।"

विनोद ने बिगड़कर कहा—"यही तो तुम्हारा दोष है! तुम्हारे ही नरम व्यवहार से इनको बढ़ावा मिलता है और दिन पर दिन ये बिगड़ते चले जा रहे हैं।"

माँ ने जरा डरते-डरते कहा—"आज के लिए इन्हें तुम माफी दे दो।"

"तो फिर तुमने मुझसे शिकायत क्यों की? मैं फिर तुम्हारी बात से इन लोगों को ठीक राह में लाने की कोशिश कभी न करूँगा।"

विनोद क्रुद्ध भाव से चला गया। अपराधियों की जान बच गयी।

माता ने अनू को गोद में लेकर कहा—"तुम इसी उमर में इनके साथ में शामिल हो गयी हो?"

धनवान मोहन बाबू के तीन लड़के हैं! विनोद है सबसे बड़ा, मध्यम है कुमुद और कनिष्ठ है प्रमोद। इन दोनों की उम्र क्रम से तेरह और बारह साल की है। लड़कों के अतिरिक्त

उनकी दो कन्याएँ भी हैं—मनोरमा और अनुपमा। अनुपमा सबसे छोटी है, छः साल की बच्ची है। मनीश, सुशीला, मृण्मयी आदि बालक-बालिकाओं का दल उनके खेल का साथी है।

२

जीवन की लम्बी यात्रा बाल्यकाल के खेल-कूद से ही प्रारम्भ होती है। उस समय रास्ता भी टेढ़ा नहीं रहता। निश्चिन्त सरल जीवन रहता है, कोई दुःख-क्लेश नहीं रहता। आनन्द-उज्ज्वल सुप्रशान्त समय व्यतीत होता है।

किन्तु यह निश्चिन्त जीवन बहुत दिनों तक नहीं रहता। समय के फेर से घोर चिन्ताओं और दुःख-कष्टों का सामना करना पड़ता है। इसलिए आठ वर्ष पहले खेल-कूद के आनन्द में पड़े रहने से जिन्होंने जीवन की आग बुझ जाने पर ध्यान नहीं दिया था, आज उनको राह में खड़े रहकर अतीत और अन्तर्गत जीवन की तरफ दृष्टिपात करने का समय आ गया है।

कुमुद-प्रमोद युवावस्था को पहुँच चुके हैं। उनकी आशा-आकांक्षा, जीवन की गति अब निर्दिष्ट सीमा में आवद्ध नहीं है। शिक्षा और कर्मक्षेत्र उनके सामने दिगन्त में प्रसारित हैं।

किन्तु दोनों भाइयों की शिक्षा-दीक्षा एक ही प्रकार से होने पर भी, दोनों के चाल-चलन में काफी फर्क स्पष्ट हो चला है। दोनों ही एफ० ए० में पढ़ रहे हैं। प्रमोद मृदु स्वभाव का है, विनयी है, लजाधुर है, जिसे लोग प्रचलित भाषा में "मुँह चोर"

कहा करते हैं। वही हालत उसकी है। कुमुद का स्वभाव इसका ठीक उलटा है। वह उद्धत और क्रोधी मिजाज का है। कुमुद वचनों के बल से और शारीरिक बल के गर्व से हल्ला-गुल्ला मचाकर घूमना-फिरना पसन्द करता था और मित्र-मण्डली में मुखिया बनकर वक्ताओं में अपनी वीरता का बखान किया करता था। प्रमोद कापी-पेंसिल लेकर एकान्त में बैठकर आकाश की तरफ ताकता रहता था। कहने का तात्पर्य यह है कि प्रमोद एक कवि है। किन्तु उसके तरुण हृदय के सुकुमार भावोच्छ्वासों से जगत् के लोगों का अभी तक परिचय नहीं हुआ है; वे सब अभी तक उसकी कापियों में ही लिपिबद्ध होकर पड़े हुए हैं।

गरमी की छुट्टी हो चुकी है। दोनों भाई घर आ गए हैं। कुमुद का विवाह होने वाला है। तीसरे पहर को दुमंजिले के अपने कमरे में खिड़की के पास प्रमोद बैठा हुआ आम के पेड़ों की डालियों के बीच से दिखाई पड़ने वाले आकाश-खण्ड की तरफ दृष्टि निबद्ध करके धीरे-धीरे कुछ गुनगुना रहा था। उसके बायें हाथ में कापी पड़ी हुई थी और दायें हाथ में पेन्सिल। स्वरचित कविता के पद को और भी सुसज्जित बनाने की चेष्टा में वह निमग्न पड़ा हुआ था।

सन्ध्या की हवा मन्दगति से बह रही थी। उसके सुन्दर ललाट पर पसीने की बूँदें सुशील वायु के लगने से धीरे-धीरे सूखती जा रही थीं। सहसा किसी के अलक्ष्य हाथों से पीछे की तरफ से उसकी आँखें बन्द हो गयीं। विचार-मग्नता के बीच यह आकस्मिक आक्रमण हो गया। प्रमोद व्याकुल

कंठ से बोल उठा—"यह तुम क्या करते हो मनी ! छोड़ो, सदा तुमको खेलवाड़ ही अच्छा लगता है।"

मनीश ने हाथ हटाकर हँसकर कहा—"वाह ! महाकवि कालिदास की कविता—रचना में बड़ी बाधा पड़ गयी।"

इन दोनों कि मित्रता असाधारण प्रकार की थी। दोनों के मत्त और स्वभाव बिलकुल ही बेमेल थे। फिर भी दोनों की मित्रता बचपन से चली आ रही है। और यह मित्रता का बन्धन दिन पर दिन दृढ़ से दृढ़तर ही होता जा रहा है। दोनों में अभिन्न मित्रता थी। इस कारण प्रमोद को मित्र के इस व्यंग्योक्ति से कुछ रोष तो अवश्य हुआ। किन्तु उसने झटपट अपने को संयत करके हँसना शुरू कर दिया। मनीश भी उसकी हँसी में शामिल हो गया।

उसके बाद मनीश एक कुर्सी खींचकर बैठ गया, बोला—"अच्छा, कविवरजी। क्या कर रहे हैं ? किसी भाग्यवान कवि की कविता की काट-छाँट चल रही है ? वे स्वदेशी हैं या विदेशी ?"

प्रमोद ने हँसकर उत्तर दिया—"क्यों ? हमारे देश में क्या अब भी कवियों का अभाव है। विदेशी कवि से उधार लेने जाऊँगा ?"

"ओह ! स्वदेश पर इतनी कृपा ? धन्य हो, धन्य हो ! किन्तु 'अब भी' कहने का मतलब क्या है ? भारत में कब किस युग में श्रेष्ट कवियों का अभाव रहा है ? बाल्मीकि, वेदव्यास से लेकर कालिदास, भवभूति, माघ, भारवि, श्रीहर्ष आदि अनेकानेक महाकवि इस भारत-भूमि को बहुपूर्वकाल में ही गौरवान्वित कर गये हैं। किस युग में यहाँ कवियों की कमी रही है ? उनके अलावा हमारे चण्डीदास, ज्ञानदास, गोविन्ददास, बलराम-

दास, घनराम, कृत्तिदास काशीराम—आदि कितने नाम गिनाऊँ ?"

प्रमोद कुछ आश्चर्य के साथ मनीश के भाषण-स्रोत में बाधा डालकर बोला—"इस एक ही वर्ष से तो तुमसे मेरा साथ छूटा है, इसके बीच ही तुमको पुराने बंगला कवियों के साथ इतना गहरा परिचय हो गया है ? मुझे तो इनमें से केवल चण्डीदास को छोड़कर और किसी का नाम ही नहीं मालूम है।"

मनीश ने आश्चर्य के साथ कहा—"यह क्या कहते हो, काशीरामदास और कृतिदास को नहीं जानते ? लड़कपन में तो हम दोनों ही—"

"ठीक-ठीक, मैं भूल ही गया था भाई ! उन्हीं दो कवियों से मुझे छन्द का परिचय हुआ था। किन्तु पुराने कवियों की बात छोड़ो। आधुनिक युग के कवियों में तुम किसको यथार्थ कवि कहते हो ?"

मनीश ने कुछ कवियों के नाम बताये तो प्रमोद ने कहा—"यह नवीन युग है, तुमने जो नाम बताये वे श्रद्धेय हैं उनकी रचनाएँ अपने युग के अनुकुल हैं और उन्होंने जो गान सुनाये वे उस युग के लिए अपूर्व ही थे। किन्तु जगत् में काल-परिवर्तन के साथ मनुष्य की रुचि भी बदलती रहती है यह स्वाभाविक बात है। पुराने कवियों का अपना प्राप्य सम्मान मिलना चाहिये किन्तु इसीलिए नवीन कवियों को उनके सिंहासन के नीचे बलि चढ़ा दी जाय यह तो कोई उचित बात न होगी ! विज्ञान-जगत् की भाँति मनुष्य के अन्तर्जगत् में दिन पर दिन नये-नये अनुभवों के साथ भावों और रुचियों का विकास नये-नये छन्दों

और नयी-नयी भाषाओं में हो रहा है। इसे ही युग-परिवर्तन कहते हैं।"

मनीश ने बीच ही में रोककर कहा—"हटाओ अपने युग-परिवर्तन को। आजकल की एक भी कविता मुझे जरा भी अच्छी नहीं लगती।

"अच्छी नहीं लगती—कह देने से ही ठीक बात हो जायेगी क्या? यही कहो कि, पीछे अच्छी लग जायगी इस डर से पढ़ता ही नहीं हूँ। यह ठीक है न?"

मनीश हँसने लगा। प्रमोद बोला—"यह केवल तुम्हारी ही बात नहीं है, ऐसे बहुत से लोग हैं जो बिना पढ़े ही विचार करने के लिए तुल जाते हैं, और जो लोग कृपापूर्वक पढ़ते भी हैं, वे लोग पहले से यह सोचकर सतर्क रहते हैं कि ये अच्छी न लगने पावें। अर्थात् हृदय के साथ वे लोग नहीं पढ़ते, खराब कहने के लिए ही लोग पहले से तैयार रहते हैं। द्वापर के आदमी यदि यह कहें कि त्रेता के अतिरिक्त दूसरे युग की सृष्टि ही नहीं हुई, तो युग की सचाई के सम्बन्ध में लोगों को सन्देह न होगा, केवल वक्ता के मस्तिष्क के ही सम्बन्ध में उनका सन्देह बढ़ जायेगा। इस युग-परिवर्तन का अर्थ है मनुष्य के ही हृदय के अनुभव की धारा का परिवर्तन, यह बात तो तुम मानते हो?"

युग-परिवर्तन, परिवर्तन कह-कहकर तो तुम पागल हो गये हो, देखता हूँ, जो सुन्दर है, वह सब देशों में सदा ही सुन्दर होकर बचा रहता है, उसका अनुभव क्या आज एक प्रकार, कल दूसरे प्रकार का होता है? तुम लोगों की रुचि की इस विकृत को या तुम लोगों के युग-परिवर्तन को इसीलिए मैं मानने को राजी नहीं हूँ!"

प्रमोद ने जोरों से हँसकर कहा—"जो सुन्दर है वही क्या अपने जन्म से ही सम्मान पाने लगता है ! कितने ही कवि अपने हृदय की अभिव्यक्ति का आदर न पाकर भग्न हृदय होकर ही संसार छोड़कर चले गये हैं, इसके कितने प्रमाण तुम्हें चाहिए ? रुचि परिवर्तन के भीतर से काल ही साहित्य-जगत् के चिर पुरातन को चिरन् तत्व प्रदान करता है।"

मनीश बीच ही में रोककर कुछ कहने जा रहा था, किन्तु एकाएक दोनों का वचन-स्रोत ही बन्द हो गया। दरवाजे के पास एक किशोरी खड़ी रहकर उत्सुक भाव से उनके तर्क-वितर्क सुन रही थी, अब सहसा युयुत्सु दोनों वीरों को एक ही साथ अपनी तरफ दृष्टिपात करते देखकर ईषत् लज्जा कुंठित मुँह से वह बोली—अनू और मनो जीजी क्या ससुराल से अभी तक आयीं नहीं प्रमोद भैया ?"

प्रमोद कुंठित भाव से मनीश की तरफ ज्यों ही देखने लगा, त्यों ही मनीश ने हँसकर कहा—"पहचान सकते हो क्या ? कैसे पहचानोगे ? मिट्टी की पृथ्वी पर तो तुम रहते नहीं हो ? कवि की पृथ्वी तो सात स्वर्गों के भी ऊपर रहती है। यह तो हमारी मृण्मयी है— अनू की संगिनी, मिनू है। याद पड़ रही है क्या कविजी ?"

प्रमोद अब पहचान गया, किन्तु तो भी मुँह ऊपर उठाकर वह कुछ बोल न सका। मनीश के साथ बातें कहने के समय ही उसके स्वभाव में परिवर्तन दिखाई पड़ा, दूसरों के साथ वह वही मुँहचोर प्रमोद मात्र है। कनिष्ठा बहिन की क्रीड़ा-सहचरी मृण्मयी के साथ भी वह बातचीत न कर सका।

मनीश दोनों को ही घबड़ाहट में देखकर एकाएक बोला—

"नहीं रे मिनू, अभी तक उनका आना नहीं हुआ है। पहुँचने में शायद शाम हो जायगी।"

मृणमयी चुपचाप खड़ी रही। अस्फुट स्वर में केवल एक बार उसने कहा—"तो अब घर जा रही हूँ।"

"जायगी क्यों, ठहर न थोड़ी देर तक और! शाम होने में तो अब अधिक देर नहीं है, उनके आने पर ही घर जाना।"

तब मृण्मयी साहस पाकर दरवाजे पर टेककर कौतूहलपूर्ण नेत्रों से कमरे की दीवारों पर टँगे चित्रों और मेज पर सजी सुन्दर चमकती हुई पुस्तकों पर दृष्टिपात करने लगी। मनीश बोला—"मिनू अब सयानी हो गयी है, इस कारण लजाधुर हो गयी है, दिखाई ही नहीं पड़ती, तो पहचानी जायगी कैसे ?"

प्रमोद ने भी इस बार चेष्टा करके अपना कुंठित भाव हटा देने का उद्योग किया, कहा—"हाँ बहुत दिनों से मैंने नहीं देखा।"

फिर मृणमयी की तरफ देखकर बोला—"क्यों रे मेरे सामने निकलने में भी तुझे लज्जा मालूम होती है।

मृणमयी ने लज्जा के साथ खूब हँसकर कहा—'वाह! ऐसी बात तो नहीं है।"

"तो क्या है ?"

"तुम लोग क्या अब खेलोगे कि बाहर निकलूँ ?"

मनीश ठठाकर हँसने लगा। "यही बात रे, जिसके लिए मैं डर रहा था वही ? मिनू को आज तक याद है कि किसी दिन हम उसके साथ खेलते थे।"

प्रमोद भी मुस्कुराने लगा। मृणमयी ने शान्त भाव से ही कहा—"वाह! याद क्यों न रहेगी ? तुम लोग क्या अब खेलते हो ?"

"तुम लोग खेलती हो ?"

मृण्मयी ने सिर हिलाया ।

"क्या खेलती हो ?"

"दस-पचीस खेल खेलती हूँ, और भी कई खेल खेलती हूँ ।

"ओः यह भी क्या कोई खेल है ? ऐसे खेल तो हम लोग भी खेलते हैं । अब तो तुम दौड़धूप के खेल नहीं खेल सकती ?"

मृण्मयी ने कहा—"नहीं । सभी अपनी ससुराल चली गयी हैं, किसके साथ खेलूँगी । अनू के आने पर उसके साथ कुछ खेलती हूँ । तुम लोग क्या खेलते हो मनी भैया ? शतरंज, ताश या और कोई खेल ?"

मृण्मयी के सरल प्रश्न से और उसकी सरल दृष्टि से मनीश ने अत्यन्त प्रसन्न होकर हँसते-हँसते कहा—"नहीं रे; हमारे खेल में अनेक प्रकार के फेर हैं । यही देखो न, अपने प्रमोद भैया का हाल, हम लोगों के साथ बातें कर रहा है जरूर किन्तु उसका मन पतंग की तरह आकाश में उड़ रहा है ।"

मृण्मयी ने कौतुक के साथ हँसकर कहा—"क्यों ! क्यों मनीश भैया ? कापी में तो लोग हिसाब लिखते हैं—पाठ लिखते हैं किताब लेकर तुम लोग खेलते हो कैसे ?"

"अरे मैं क्या ? तेरे प्रमोद भैया का ही यह खेल है—इसका नाम है भून लगने का खेल ।

इसबार मृण्मयी ने अत्यन्त हँसकर कहा—"जाओ मजाक करते हो, कापी लेने से क्या भूत लगता है ? भूत कैसे लगता है मैं देख चुकी हूँ । हमारे मुहल्ले के बनिये की औरत को भूत लगा था । वह अद्भुत ढंग से हाथ-पाँव पटकती थी और चीखती थी ।"

मनीश ने बीच ही में रोककर कहा—"अच्छा विश्वास नहीं होता तो कापी चुराकर पढ़कर देख लेना, उसमें तुम वही सब भूत की करामात देख पाओगी।"

प्रमोद का चेहरा लज्जा से लाल होता जा रहा था। बालिका होते हुए भी रमणी सुलभ दृष्टि से मृण्मयी ने उसे देख लिया था। उसका बालसुलभ कलहास्यतरंग उसके ओठों पर ही निस्पन्द हो उठा। उसने केवल मीठे स्वर से पूछा—"क्यों मनीश भैया ? कापी में क्या है ?"

"कविता है रे कविता। तेरा प्रमोद भैया तो बहुत बड़ा कवि है। दूसरा रवि बाबू है !"

इस बार अपने को सम्हाल रखने में असमर्थ प्रमोद के गले से निकल पड़ा—"मनीश ! मनीश !"

मनीश अटल भाव से हँसने लगा। सहानुभूति और प्रशंसा से दोनों आँखों को चमकाकर मृण्मयी ने आग्रह के साथ पूछा—"सच है प्रमोद भैया, तुम कविता की रचना करते हो ? सच है !"

मनीश के उच्चहास्य, मृण्मयी की उत्सुकता पूर्ण दृष्टि और प्रमोद की व्यथित लज्जा को एकाएक रूपान्तर में परिणत करके झुनझुन शब्दों से एक ओर किशोरी दरवाजे के पास आते ही मनीश को देखकर जरा पीछे हट गयी।

मृण्मयी उल्लास आग्रह से उसकी तरफ अग्रसर होकर बोली—"अनू, वह तो हम लोगों का मनीश भैया है।"

प्रमोद ने प्रसन्नचित से कहा—"अनू, चलो, घर में चलो ! तुम कब आई ?"

लज्जित चेहरे से अनू मृण्मयी के साथ घर में चली गयी।

किन्तु उसके माथे पर से कपड़ा भी नहीं उतरा, मुँह से कोई बात भी नहीं निकली !

"मनो जीजी आयी है ?"

अनू ने सिर हिलाकर बताया 'हाँ' !

"उसका बच्चा कितना बड़ा हो गया है ? चलो देख आवें ? मिहिर बाबू भी तो आ गये हैं ?"

इस बार अनू अपना सिर भी न हिला सकी। लज्जा से बिलकुल जड़वत् हो गयी।

प्रमोद ने पुकारा—"चलो मनीश, मनो जीजी के बच्चों को देखोगे ?"

मनीश की सांसारिक अभिज्ञता प्रमोद से बहुत अधिक थी। वह समझ गया, बहुत दिनों के बाद भेंट होने पर युवतियों के मन में जो संकोच पैदा हो जाता है उसे छोड़ने में उन्हें प्रारम्भ में कष्ट मालूम होता है, धीरे-धीरे अभ्यास से ही वह सहज हो जाता है। ससुराल में रहकर अनू भी नववधू की पदवी पा गयी है, अपने पिता के घर पहुँचकर भी सहसा उस संकोच को वह छोड़ नहीं सकती।

मनीश बोला—"इससे अच्छा तो यह है कि मैं पहले मिहिर बाबू की स्वागत करने के लिए जाऊँ, इसके बाद बच्चों को देखूँगा।"

आत्मीय स्वजनों से परिवेष्टिता होकर मनोरमा बैठी हुई है, गोद में एक वर्ष का बच्चा है। गृहिणी उसको सुमिष्ट भद्रतासूचक सम्बोधन से तृप्त कर रही हैं। क्योंकि, माता की गोद छोड़कर, वह नव परिचिताओं की गोद में किसी तरह भी जाने को राजी नहीं है। मनोरमा बच्चे की अद्भुत धीशक्ति और उसके

अभूतपूर्व क्रियाकलाप का वर्णन करके सुनने वालों को मोहित कर रही है। सभी एक स्वर से सम्मति दे रहे हैं कि, ऐसा लड़का और किसी को इसके पहले नहीं हुआ था, और सम्भवतः होगा भी नहीं !

प्रमोद उसके पास जा खड़ा हुआ। बिलकुल इच्छा न रहने पर भी उसने अपना सिर एक बार झुका लिया, क्योंकि माँ अभी झिड़कने लगेंगी और आत्मीय स्वजन भी अवाक् हो जायेंगे ! किन्तु, जिसके साथ एक साथ दौड़धूप मचाकर खेलता रहा, उसे प्रणाम करने में प्रमोद को लज्जा मालूम होने लगी। मनोरमा ने स्नेहसूचक आशीर्वाद के भाव से उसके माथे पर हाथ रखकर कहा—"क्या रे प्रमोद, तू अच्छी तरह है ?"

"हाँ" कहकर प्रमोद बच्चे को गोद में उठाने गया, तुरन्त ही हाथ बढ़ाकर बच्चा गोद में उछल पड़ा। बच्चे की अद्भुत धीशक्ति का हाथोंहाथ परिचय पाकर इतने बड़े सन्देह-शील व्यक्ति को भी मान लेना पड़ा, कि यह लड़का कोई प्रसिद्ध मनुष्य अवश्य होगा।"

शिशु चरित्र में अभिज्ञ गृहिणी ने हँसकर कहा—"नहीं नहीं, छोटे-छोटे बच्चे पुरुषों की खुली गोद में जाना ही ज्यादा पसन्द करते हैं। उनका स्वभाव ही ऐसा है।"

प्रमोद ने पुकारा—"आ अनू चित्र देखेगी ?"

माता ने पुकारा—"ऐ अनू, पानी पी जा।"

"आ रही हूँ, माँ" कहकर अनू, भैया के पीछे-पीछे भाग चली।

मृण्मयी ने भी चुपचाप उसका अनुसरण किया।

माता ने कहा—"अब क्या उसे खाने पहनने की बात याद

रहेगी ! छोटे भैया से कहानी सुनने और पुस्तकें देखने को मिलने पर वह फिर कुछ नहीं चाहती। बचपन से ही छोटे भैया के पीछे-पीछे छाया की तरह रहने की ही उसकी आदत है। प्रमोद इधर कई वर्षों से कलकत्ता पढ़ने के लिए चला गया था, इससे उसके मुँह की हँसी मानों खतम ही हो गयी थी। पूजा की छुट्टी, गरमी की छुट्टी कब आयेगी, दिन गिनते-गिनते समय बिता रही थी। इधर कई महीनों से अपनी ससुराल जाकर कैसे रह रही थी, यही मैं सोचती रहती हूँ।''

३

कुमुदकुमार का विवाह निर्विघ्न समाप्त हो गया। बड़ी बहू की तरह यह बहू भी सुन्दर मिली है देखकर, गृहिणी खुश हैं।

विवाह में बहुत-सी चीजे दहेज में मिली हैं, इस कारण ससुर बहुत प्रसन्न हैं। सुन्दरी स्त्री है, इसलिए कुमुद भी प्रसन्न है।

समाज कन्याग्रहण के पक्ष में अपना उदार मत रखता है। ''स्त्रिरत्नं दुष्कुलादपि'' यह कहावत प्रसिद्ध है। कन्या के पिता कुछ अंग्रेजी चालचलन के हैं, म्लेच्छभावापन्न हैं। इसी कारण उपर्युक्त बचन बार-बार सुनाई पड़ रहा है। कन्यापक्ष के लोग भी प्रसन्न हैं। रूप, वित्त, कुल, किसी की भी कोई कमी नहीं पड़ी है। वर पक्ष और कन्या पक्ष के लोग तो खुश ही हैं, तीसरे पक्ष के लोग भी खुश ही हैं। अर्थात् जिन लोगों का कुछ खाने·

पीने का सम्बन्ध है, उन्हें काफी मिठाइयाँ मिली हैं इसलिए उन्हें भी प्रसन्नता ही हैं।

गृहिणी ने एक दिन कहा—"अब तो हमारे प्रमोद के लिए भी एक ऐसी ही सुन्दरी बहू ला सकने से ही ठीक होगा।"

यह बात मनीश ने सुन ली। उसने स्पष्ट स्वर में कहा—"और आपके प्रमोद का जीवन भी उसी दिन सार्थक हो जायेगा।"

प्रमोद ने लाज के मारे मनीश को एक घूँसा लगाया, जिससे मनीश एक तरफ गिर पड़ा। दोनों ही उस समय माँ के पास खाना खा रहे थे। माँ ने कहा—"राम-राम! तुम लोग क्या आपस में ठेला-ठेली करते रहते हो। मनीश, तुमने क्या कहा? जीवन सार्थक होगा यह कहकर तुम हँस क्यों पड़े?

मनीश ने मिठाई खाना तब तक भी नहीं छोड़ा था। मिठाई खाते-खाते केहुनी पर टेककर कहा—नहीं, नहीं, मैं भी यही बात कह रहा हूँ। बड़ी चाची, वही सुन्दरी बहू लाने की बात छोड़कर बाकी दूसरे जिन कामों से लोग आदमी बने हैं यदि लोग वही काम करें—तो उससे क्या माता का या लड़के का जीवन सार्थक नहीं होता?"

माँ ने बीच ही में रोककर कहा—"चुप-चुप! यह कैसी बात है तुम लोगों कि? क्यों मेरे घर में सुन्दरी बहू न आवेगी? बचपन से ही हम लोग बच्चे को आदर करती हैं भगवान से मनाती है कि सुन्दरी बहू लावेगा, लड़की को आदर करती हैं और भगवान से मनाती हैं कि अच्छा घर मिलेगा, सुन्दर वर मिलेगा। लड़का-लड़की पैदा करके ही माँ सबसे पहले यही आशा करती है। तुम्हारी माँ भी घर में यही बात नहीं कहतीं।"

मनीश ने कहा—"जरूर कहती हैं बड़ी चाची? हमलोग

भी अपने बचपन से ही ये ही बात सुनते आ रहे हैं! इसीलिए 'जीवन की चरम सार्थकता प्राप्ति' की इच्छा रक्त-मज्जा के साथ मिल गयी है। इसके सिवा, जीवन का और कोई लक्ष्य है इसकी धारणा भी आप लोगों के लड़के-लड़कियों को नहीं है। किन्तु बड़ी चाची···!''

''हाँ रे, तेरी उमर तो हमारे कुमुद की ही उमर के लगभग होगी। तेरा ब्याह करने में तेरी माँ इतनी देर क्यों कर रही हैं ? मेरे मायके में तेरे लायक एक लड़की है! यह क्या रे, तू उठ क्यों रहा है ?''

''अब नहीं बड़ी चाची, अब और कुछ भी मेरे गले से नीचे न उतरेगा। प्रमोद, घूमने के लिए चलना हो तो चलो, मैं तो जा रहा हूँ !''

मनीश झटपट दोनों पैरों में चप्पल पहनकर चला गया।

माँ ने कहा--''यह क्या है रे प्रमोद ? मनीश ब्याह की बात सुनकर इस तरह भाग गया क्यों ?

प्रमोद ने हँसकर कहा--''यही तो उसके लिए आतंक है! इससे बढ़कर आतंक की बात उसके लिए कुछ भी नहीं है !''

तीसरे पहर प्रमोद अपने कमरे में मेज के पास बैठकर कुछ लिख रहा था। सामने की घड़ी में टनाटन पाँच बज गये। प्रमोद ने खिड़की से बाहर की तरफ देखा। सूर्य बिलकुल ही पश्चिमाकाश में लुढ़क पड़े थे। जेठ की प्रचण्ड सूर्य किरणों के उत्ताप से शरीर से पसीना निकल रहा था। मनीश को अभीतक नहीं आया देखकर प्रमोद ललाट का पसीना पोंछकर फिर लिखने लगा।

झुनझुन शब्दों से कोई आकर उसके कमरे के दरवाजे के पास खड़ी हो गई। प्रमोद ने मुँह ऊपर नहीं उठाया—वह

जानता था कि अनू ही इस तरह किसी कारणवश या अकारण भी उसके पास आ जाती है।

जो आ गयी थी, वह शायद किंकर्तव्यविमूढ़ होकर यही सोच रही थी कि भाग जाय या नहीं। किन्तु प्रमोद को वाह्यज्ञान शून्य देखकर चुपचाप एकबार गरदन टेढ़ी करके उसने देखा कि, प्रमोद एक कापी में छोटी-छोटी लाइनों में सजावट से कविता की तरह कुछ लिख रहा है। अब तो वह भाग न सकी। पहले का 'न ययौ न तस्थौ' भाव को दूर करके वह टेबिल की तरफ दो कदम बढ़ आयी। थोड़ी देर तक रुकी रहकर अन्त में उसने अदम्य उत्सुकता भरे कंठ से पुकारा—"प्रमोद भैया!"

प्रमोद ने मुँह ऊपर उठाकर कहा—"क्या अनू, नहीं, यह तो मृण्मयी है?"

अनू के साथ उसको कई दिनों से बराबर देखते-देखते उसके सामने-उसका संकोच दूर हो गया था। मृण्मयी को चुपचाप खड़ी देखकर उसने फिर कहा—"अनु को शायद खोज रही हो; मिनू? वह आजकल कभी-कभी बहुओं के पास रुक जाती है। जाकर देखो शायद वह वहाँ ही होगी!"

मृण्मयी तब एक-एक कदम आगे बढ़ने लगी। किन्तु उसकी अनिच्छुक मृदुगति से प्रमोद समझ गया कि, जाने की उसकी इच्छा बहुत कम है। शायद वह अनु की तरह चित्र देखने या वार्तालाप करने ही के लिए आयी है, क्योंकि बराबर अनु के साथ रहते-रहते उसे अनु के नशे का थोड़ा बहुत स्वाद भी मिल गया है—इस बात को प्रमोद जानता था।

मन ही मन जरा स्नेह के साथ हँसकर प्रमोद ने पुकारा—"मिनू, मुझे जरा पानी तो ढाल दो। मिनू सुराही से गिलास में

जल ढालकर ले आयी और प्रमोद के हाथ में दे दिया। प्रमोद थोड़ा जल पी गया और उसे फिर यथास्थान में रखकर टेबिल पकड़ कर खड़ा हो गया। प्रमोद ने कहा—"चित्र देखोगी? देखना चाहो तो वह पुस्तक ले आओ!"

मृण्मयी ने सिर हिलाकर कहा—"नहीं!"

"तो क्या किस्सा कहानी? अभी तो मुझे बहुत काम करने हैं!"

मृण्मयी ने कुंठित भाव से घबड़ाकर कहा—नहीं-नहीं मैं अनू की तरह बहुत कहानियाँ सुनना और चित्र देखना ही पसन्द नहीं करती प्रमोद भैया! तुम लिखो!"

"तो तुम चुपचाप यहाँ खड़ी रहकर ही क्या करोगी?'

"मेरे यहाँ रहने से तुम्हारा क्या हर्ज है प्रमोद भैया। अनू तो इस तरह कई दिन रहती है, देखती हूँ!"

"तो वह चमकदार छोटी पुस्तक ले आओ! उस दिन अनू ने उस पुस्तक की बड़ी प्रशंसा की थी!"

"वह कैसी पुस्तक है?"

"वह कविता की पुस्तक है—बहुत ही सरल सहज कविताएँ उसमें हैं, तुम अच्छी तरह समझ सकोगी!"

मिनू ने उदास चेहरे से कहा—"मैं वह सब पढ़ना पसन्द नहीं करती!"

"तो तुम क्या पसन्द करती हो?"

"हाँ, प्रमोद भैया, तुम वह क्या लिख रहे हो?"

प्रमोद ने झटपट कापी के पन्ने को उलाटकर कहा—"वह कुछ नहीं है, कुछ नहीं है!"

"हाँ मैंने देख लिया है! वह एक कविता है! वह कैसी

कविता है प्रमोद भैया ? उस दिन तुमने मनीश भैया से जैसी कविता की चर्चा की थी, वैसी ही कविता ?"

मिनू की आन्तरिक इच्छा उसकी लज्जा का अतिक्रम करके प्रकट होती जा रही थी। प्रमोद यह समझ गया और कौतुक के बीच भी उसने आनन्द का अनुभव किया। स्निग्ध हास्य के साथ बोला—"किस दिन कौन कविता तुमने सुनी थी, यह मैं कैसे जानूँगा ?"

"वही, जिसके बारे में मनीश भैया ने खूब तर्क किया था ! मनीश भैया बहुत बोलते हैं, कोई भी बात अच्छी तरह सुनने नहीं देते ! वही जो तुम पढ़ रहे थे प्रमोद भैया !"

प्रमोद ने हँसते-हँसते कहा—"कितने दिन ही तो कितनी ही कविताएँ पढ़ता रहता हूँ, कुछ भी न बताने से मैं कैसे समझूँगा ?"

मृण्मयी ने इस बार बीच ही में रोककर सिर हिलाकर कहा—"मैं तो उसे सुनना नहीं चाहती, अपनी रचित कविता कोई एक सुनाओ न प्रमोद भैया। उस दिन जो मनीश भैया कह रहा था, तुम खूब अच्छी अच्छी कविताएँ लिखते हो। मुझे एक दो क्या तुम न सुनाओगे प्रमोद भैया ?"

मृण्मयी का कंठस्वर मृदु होता जा रहा था—संकोच, आग्रह और विनती—तीनों के एक साथ मिल जाने से उसकी बातें रुकती जा रही थीं। तो भी, किसी तरह अपनी बात कहकर वह आवेदन और प्यार की दबाव भरी दृष्टि से प्रमोद की तरफ ताकती रही।

प्रमोद ने दुगुने उत्साह से कहा—"कहाँ, नहीं तो ! मनीश कभी मेरी लिखी कविता की बड़ाई नहीं करता—वरन् उसे

लेकर मजाक ही उड़ाता है। उसके मुँह से तुमने कब मेरी कविता की प्रशंसा सुनी ?''

''मनीश भैया वैसा ही आदमी हैं, अच्छी चीज पर भी वे मजाक ही करते हैं, इससे मुझे बहुत ही क्रोध होता है ! वह तुमने क्या लिखा है, बताओ न ?''

मृण्मयी का आग्रह प्रमोद को अच्छा लग रहा था, जरूर किन्तु अनभ्यस्त कार्य होने के कारण उसकी लज्जा दूर नहीं हो रही थी। प्रमोद को हिचकते देखकर मृण्मयी ढाँढ़स पाकर एक खिड़की पर जा बैठी। उसके बाद उसने कहा—''मैं किसी तरह भी न मानूँगी प्रमोद भैया, मुझे सुनाना ही पड़ेगा, तुम्हारे पैरों पर गिरती हूँ ! अनू को तो तुम बहुत सुनाते हो। कुछ भी आपत्ति तुम नहीं करते !

प्रमोद ने मृदु स्वर से कहा—''उसको भी तो मैंने अपनी रचना कभी नहीं सुनाई !''

''अच्छा, मुझे ही सुनाओगे तो इसमें क्या दोष होगा, बताओ !''

प्रमोद कापी लेकर कुछ देरतक इधर-उधर हिलाता रहा, फिर मन की अपनी दुर्बलता दबा रखने के लिए कापी को एक तरफ रखकर उसने कहा—''नहीं, इससे तो यही अच्छा है कि तुम अनू को बुला लाओ, रविबाबू की लिखी हुई शिशु नामक कविता का कुछ अंश तुम लोगों को सुनाऊँ !''

मृण्मयी का चेहरा उदास हो गया। कुछ देर तक वह चुपचाप बैठी रही, फिर ज्योंही उठ खड़ी हुई, त्योंही प्रमोद ने कुछ व्यक्तिगत भाव से कहा—''तुम शायद नाराज हो गयीं मिनु !''

उत्तर न देकर मिनू चली जा रहा रही है देखकर प्रमोद ने पुकारा—"नहीं, अब जाना नहीं पड़ेगा, आओ ! तुम्हारी जब इतनी ही इच्छा है, तब सुनो !"

मिनू रुक गयी। प्रमोद कविता सुनाने लगा। कविता का शीर्षक था 'उच्छृङ्खल'।

अभ्यास न रहने के कारण प्रमोद का कंठस्वर, पुनः पुनः शिथिल होता जा रहा था अपनी लिखी कविता इस तरह किसी को उसने कभी नहीं सुनायी थी और किसी भी श्रोता ने इतने आग्रह से उसकी कविता सुनने की इच्छा भी नहीं की थी। अनू कविता का मर्म अच्छी तरह न समझ सकी चित्र देखने और गल्प सुनने में ही उसका आग्रह रहता है। मनीश कभी-कभी उसकी कापी लेकर इधर-उधर देख तो लेता है किन्तु देखकर उसके मुँह से केवल व्यंग्य ही निकलते हैं। मनीश उसका घनिष्ठ मित्र तो अवश्य है पर कविता रचना के सम्बन्ध में उससे प्रमोद को कोई उत्साह नहीं मिलता, बल्कि अपनी रचनाओं को छिपाने की भी जरूरत पड़ती है। "स्वान्तः सुखाय" अर्थात मनकी मौज के लिए लिखते हो। यही प्रमोद को मनीश कहा करता है। किन्तु प्रमोद ही जानता है कि उसके मन की मौज क्या है ? दूसरों के लिए भले ही प्रमोद की रचनाएँ तुच्छ हों, किन्तु प्रमोद के लिए उसके बीस वर्ष के जीवन में यही सर्वस्व है ! इसीलिए वह दूसरों की सहानुभूति आकर्षित करने की चेष्टा नहीं करता, उसे इस काम में लज्जा और घृणा मालूम होती है। स्वजन-सगों के प्रति अभिमान पैदा होता है, व्यंग्य करने से वेदना मालूम होती है, आँखों में आँसू भर आते हैं। इसी कारण प्रमोद पूरे हृदय से पक्षिणी की भाँति अपने इन अण्डों को ढँककर बैठा रहता है। आज उसी

जगह पर मृण्मयी पूर्ण सहानुभूति का एकान्त आग्रह लेकर इस प्रकार आ पड़ी कि, प्रमोद उसके इस आगमन को तुच्छ समझ कर किसी तरह भी ठुकरा न सका, भले ही वह बालिका है। तो भी उसमें प्राण तो है, सुख-दुःख की अनुभव-शक्ति तो है। उसके चेहरे पर, आँखों पर यह जो अत्यन्त आनन्द चुपचाप प्रदीप की तरह जल रहा है--दूसरों को सुख देने के इस आनन्द से प्रमोद के हृदय में यह जो अपूर्व सुख का अनुभव हो रहा है, इसे तो वह अपने जीवन में आज तक और कहीं भी न पा सका था। इस सुख का तो आस्वाद उसको पहले बिलकुल ही नहीं हुआ था।

कविता-पाठ पूरा हो जाने पर मृण्मयी कुछ देर तक चुपचाप बैठी रही। उसके बाद वह दुगुने व्यग्र स्वर से बोली—"अब नहीं है प्रमोद भैया? इतने में ही खतम हो गयी! इतनी छोटी कविता है? नहीं, यह हो नहीं सकता। एक बड़ी कविता मुझे पढ़कर सुनाओ!"

प्रमोद ने हँसते-हँसते कहा—"क्यों? तुम को क्या यह बहुत ही अच्छी लगी है!"

"हाँ, किन्तु बहुत ही छोटी है, इतनी जल्दी खतम हो गयी क्यों? एक दूसरी कविता पढ़ो, प्रमोद भैया!"

"पढ़ूँगा, किन्तु इस कविता का मतलब तुम कुछ समझ पाई हो?"

मृण्मयी इस बार जरा ठिठक गयी—बोली—"यह मैं कैसे बताऊँ! शायद पूरा अर्थ समझ में नहीं आया है। तुम समझा दो न। किन्तु सुनने में बहुत अच्छी लगी है प्रमोद भैया! और भी सुनने की इच्छा हो रही है।"

"शायद तुमने कोई दूसरी कविता अब तक सुनी या पढ़ी नहीं थी, नहीं तो इसमें कोई अच्छी लगने की बात तो है नहीं। कविता की पुस्तकों की भरमार है। अनेक कवि लिख रहे हैं। तुम यदि उन्हें पढ़तीं तो मेरी रचना तुमको इतनी अच्छी नहीं लगती!"

मृण्मयी ने बीच ही में रोककर कहा—"कभी नहीं! मैंने कितनी ही पद्य-पुस्तकें पढ़ी हैं। ऐसी अच्छी तो मुझे एक भी कविता नहीं मालूम हुई। उनको तो मुझे किसी ने पढ़कर सुनाया नहीं। खुद मैं पढ़ भी नहीं सकती, अच्छी तरह समझ भी नहीं सकती। और उन्हें कैसे लोग लिख रहे हैं, मुझे अच्छी ही नहीं लगतीं। और यह जो तुमने लिखा है, बिना समझे ही बहुत आनन्द मिल रहा है। कैसे तुमने ऐसा लिखना सीख लिया? और कोई तो ऐसा नहीं लिख सकता। भैया नहीं लिख सकता! मनीश भैया भी नहीं लिख सकते।"

"वे लोग भले ही न लिख सकें। किन्तु इससे बहुत अच्छे-अच्छे पद्य और भी कितने ही लोग लिख रहे हैं।"

"लिखते रहें। मेरे लिए तो यही अच्छा है! हाँ प्रमोद भैया, तुमने जो ऐसा लिखना सीख लिया है इसमें क्या तुमको आनन्द नहीं होता? मुझे तो बड़ा आनन्द मिल रहा है।"

प्रमोद थोड़ी देर तक चुप रहकर बोला—"तो सुनो! मैं जानता हूँ कि मुझे कुछ भी लिखना नहीं आता, तो भी जो कुछ लिख सकता हूँ, उसको ही मैं कितना पसन्द करता हूँ। अनू को बुला लाओ—नहीं तो वह दुःखी होगी।"

मृण्मयी बिजली की तरह दौड़ती हुई गयी और अनू को बुलाकर ले आयी। प्रमोद को उसके सामने भी कुछ संकोच

मालूम हो रहा था, किन्तु उसने जब व्याकुल चेहरे से कहा 'छोटे भैया—पहले मैं वही कविता सुनूँगी जिसे मिनू जीजी सुन चुकी है; पहले उसी को सुनु ँगी।''

प्रमोद की हिचक मिट गयी। स्नेहस्निग्ध स्वर से वह बोला—''पहले इस कविता को सुन लो, बाद को उसको भी सुन लेना ? इसका शीर्षक है 'मेरी कविता' ! सुनो'' मृणमयी बिलकुल ही प्रमोद की कुर्सी के पास झुककर खड़ी हो गयी। प्रमोद इस बार साफ स्वर से पढ़ने लगा।

अपनी रचना आपही पढ़कर सुनाने में इस बार प्रमोद को लज्जा नहीं हुई। अपने हृदय का पूरा भाव प्रकट करके अपनी कवित्व-शक्ति को सम्बोधन करके, उसकी बन्दना करने के बाद प्रमोद अन्त में भाव-मुग्ध चेहरे से चुपचाप बैठा रहा। बड़ी देर में वह अपने होश में आया और दृष्टि दोनों श्रोत्रियों पर पड़ते ही उसने देखा कि दोनों ही उसके चेहरे की ओर आवाक् होकर ताक रही हैं। चारों नेत्र चुपचाप प्रमोद को इतना गौरव आनन्द और प्रशंसा प्रदान कर रहे थे कि प्रमोद का उनसे कविता के बारे में उनका मन्तव्य पूछने में भी लज्जा मालूम हुई !

थोड़ी देर बाद नीरवता भंग करके मृणमयी ने कहा—''यह तो पहली कविता से कुछ अधिक समझ में आयी है। प्रमोद; भैया ! अच्छा तुम सुनो, मैं बता रही हूँ, देखो, मैं समझ सकी हूँ या नहीं !''

रुक-रुक कर मृणमयी कविता का भावार्थ समझाने लगी। प्रमोद चतुर्दशवर्षीया बालिका की तीक्ष्ण कवितार्थ ग्रहण-शक्ति देखकर सचमुच ही आश्चर्य में पड़ गया। वह समझ गया, कि बुद्धि के साथ ही इस बालिका में विद्या का भी योग है। साहित्या-

लोचना की सामर्थ्य इसके तरुण जीवन में है। निकम्मे उपन्यास पढ़कर यह समय नहीं नष्ट करती, सामयिक साहित्य और आधुनिक कवियों से यह परिचय रखती है।

अनु की विस्मित दृष्टि इस बार मृण्मयी पर भी पड़ी थी। वह तो बिलकुल ही समझ न सकी थी, इसी कारण मृण्मयी को भी वह बुद्धू ही समझ रही थी।

प्रमोद ने अनू का विमूढ़ भाव देखकर हँसते हुये कहा—"अनू ही सबसे अधिक अर्थ समझ सकी है! ठीक है न अनू ?"

अनू ने लज्जा से मुँह ढक लिया। मिनू ने घबड़ाहट से उसकी तरफ देखकर कहा—"मैं जितना समझ सकी हूँ, अनु भी उतना समझ गई है। हम दोनों में ही समान समझ है!"

अनू ने कहा—"नहीं, मैं कुछ भी समझ नहीं सकती, किन्तु सुनना चाहती हूँ!"

४

उस दिन सन्ध्याकाल के स्निग्ध शान्त अवसर पर मकान के एक कोने में तीन प्राणियों ने जिस अनास्वादित रस को चख लिया था, उसके नशे में तीनों प्राणी विभोर हो गये। तीन बजते न बजते ही मृण्मयी अपने छोटे भाई को गोद में लेकर आ पहुँचती थी—और उसे देखते ही अनु का भी पान लगाना, पुतली को कपड़े पहनाने, कागज की पुतलियाँ बनाने या खेल के गहने तैयार करने के जरूरी कामों को उस दिन के लिए पूरा

करके ठीक स्थान पर पहुँच जाने की हड़बड़ी लग जाती थी। साढ़े तीन बजते ही अनु ज्योंही प्रमोद की मेज और उसके कमरे की सफाई के लिए उस कमरे में पहुँच जाती थी, त्योंही प्रमोद भी हाथ की पुस्तक या कापी पेन्सिल एक तरफ रखकर हँसी के साथ दरवाजे की तरफ ताकने लगता था, क्योंकि अनु के पीछे मृण्मयी अवश्य ही आ गयी है, यह बात वह निश्चित रूप से ही जानता था। दो-चार स्वागत-संवर्धना के बाद उनके काम-काज की बातें बन्द हो जाती थीं। तब केवल प्रमोद की नव-लिखित और अलिखित कविताओं की आलोचना चलने लगती। प्रमोद जो कुछ लिख चुका है—लिख रहा है या लिखेगा यह सब ही मृण्मयी ढूँढ़ निकालती थी। इन लोगों की बैठक इस तरह जमने लगी कि, कभी-कभी मनीश भी आकर प्रमोद को बुलाता तो भेंट ही नहीं हो पाती थी। उसे निराश लौटना पड़ता था। मनीश उसका हार्दिक मित्र तो था अवश्य, किन्तु प्रमोद के मर्म और मर्मस्थल के साथ मनीश की कुछ भी सहानुभूति न रहने के कारण प्रमोद उससे कुछ डरता रहता था। सहानुभूति तो दूर रही, व्यंग्य से मनीश प्रमोद को व्यथा ही पहुँचाता था। मनीश को देख लेने पर इसी कारण से वह धीरे-धीरे अपनी कापी छिपा लेता था। इसी कारण मित्र-विहीन उसके शून्य हृदय पर इन बालिकाओं ने प्रभाव डाल दिया था। मनीश को देखने के साथ मृण्मयी तो कम किन्तु अनू कुछ घबड़ाहट में पड़ जाती थी, इसलिए उनके रहते समय मनीश प्रमोद के कमरे में बहुत ही कम आता था।

वह दूर से वाक्यबाण बरसाकर प्रमोद को खींचकर बाहर निकाल लाता था। मृण्मयी से उमर में एक साल की छोटी होने पर भी अनु कुछ तो अपने स्वभाव के कारण और ससुराल

से लौट आने के कारण लज्जा और कुंठा से जड़-सड़ हो उठी है, किन्तु मृण्मयी का स्वभाव अनू के बिलकुल ही विपरीत है। हरिणी की भाँति उसके चपल स्वभाव में बाहर से कोई आवरण आकर अभी तक छाया न डाल सका है। कुलीन कन्या मृण्मयी अभी तक कुमारी ही है।

बेचारी अनू को किन्तु बहुत ही कठिनाई मालूम होने लगी। अपने छोटे भैया की इन अपूर्व रचनाओं को वह मिनू जीजी की तरह अच्छी तरह समझ नहीं सकती थी, समझाकर सुना भी नहीं सकती थी, किन्तु उस कमरे को छोड़कर अन्यत्र चले जाने की सामर्थ्य भी उसमें नहीं थी। इधर गुड़ियों के विवाह का दिन क्रमशः निकट आ रहा है, उसे मिनू बिलकुल ही भूलकर केवल कविता ही सुनती रहती है। वह बच्चे की माँ है, उसका निश्चिन्त रहना कुछ शोभनीय है, किन्तु अनू तो कन्या की माता है, उसके लिए तो निश्चिन्त रहने का उपाय ही नहीं है। रंगीन साड़ी में लटकनदार किनारी लगवाई नहीं गयी है, गहने तैयार न हो सके हैं। अगले सावन के महीने में ही उसकी कन्या का विवाह होगा। इसी कारण अनू बहुत सोच-विचार करके अपनी हथेलियों पर गाल रखकर मेज के पास खड़ी न रह सकी, क्योंकि ऐसा करने से तो उसका काम न चलेगा। वह तो कन्या की माँ है। इसीलिए प्रमोद के कमरे में आते समय वह कुछ डोरे, बारीक तार साथ ले आती है और खिड़की के पास बैठकर धीरे-धीरे अपनी गृहस्थी का काम करती रहती है। मृण्मयी कभी-कभी क्रोध करके बोल उठती—"जा, तू खेल ही कर, खूब कविता सुन रही है!"

प्रमोद हँसकर बोल उठता—"नहीं, नहीं, अनू सुन तो रही

है जरूर, देखो न, भय से उसका मुख सूख गया है !''

अनू लज्जित होकर आँचल के नीचे सामग्री छिपा लेती थी।

इसी तरह सुखपूर्वक दिन पर दिन बीतते जा रहे थे।

एकाएक एक दिन प्रमोद ने सुन लिया, उसकी बड़ी बहन मनोरमा माँ से कह रही थी—''वह लड़की जितनी सयानी होती जा रही है, उतनी ही निर्लज्ज भी होती जा रही है। जरा भी लज्जा नहीं, शरम नहीं, प्रमोद इतना बड़ा हो गया, उसके साथ इतना मिलना-जुलना क्यों ? यह तो अच्छा नहीं मालूम होता !''

माँ ने कहा—''इसमें दोष ही क्या है ! लड़की ही तो है ?''

''लड़की ? ब्याह नहीं हुआ है; इसीलिए इस तरह घूमने पाती है ! नहीं तो हमारी अनू से भी वह उमर में बड़ी है। और प्रमोद की भी उमर अब ब्याह योग्य हो रही है !''

माँ ने कुछ रंज होकर कहा—''ब्याह की उमर हो जाने से ही क्या लड़के बूढ़े हो जाते हैं ? उनकी उमर ही क्या है ? तू कैसी बात कहती है ? अनू-मिनू क्या अलग-अलग हैं ?''

मनोरमा ने ओठ सिकोड़कर कहा—''अपनी सगी बहन तो वह नहीं है। यह घनिष्टता मुझे तो ठीक नहीं मालूम होती, इसीलिए कहती हूँ, ''इससे तुम नाराज हो या खुश हो ?''

माँ ने तो भी इस बात पर ध्यान नहीं दिया। फिर मनोरमा भी चुप हो गयी। किन्तु प्रमोद उसकी यह बात सुन चुका था। मनोरमा उम्र में उससे केवल एक वर्ष की बड़ी थी। वही मनोरमा इतना बड़प्पन दिखाकर रोब जमाना चाहती है यह देखकर वह उसपर बहुत ही बिगड़ गया। मृण्मयी भी लगातार दो-तीन दिन नहीं आयी, किन्तु मनोरमा के ससुराल

चले जाने के बाद फिर मृण्मयी का यह संयम टूट गया।

इधर गर्मी की छुट्टी भी खतम होती जा रही थी। कुमुद कई दिन पहले ही कलकत्ता चला गया था, क्योंकि उसकी ससुराल कलकत्ते में ही थी। प्रमोद के जाने की बात सुनकर अनू और मिनू का चेहरा क्रमशः म्लान होने लगा।

मिनू ने एक दिन पूछा—"प्रमोद भैया! कलकत्ते में तुम्हारी रचनाओं को कौन सुनता है?"

"कोई भी नहीं, आपही लिखता हूँ, आप ही पढ़ता हूँ!"

मृण्मयी ने प्रेम का जोर दिखाकर कहा—"वाह! यह क्या अच्छा मालूम होता है? तुम वहाँ ढेर के ढेर लिखते जाओगे और हम लोगों को कुछ मालूम भी न होगा!"

प्रमोद ने हँसते-हँसते कहा—"तो इसमें बात ही क्या है? अब क्या करना चाहिये?"

मृण्मयी ने आँखें झुकाकर प्रेम भरे स्वर से कहा—"लिखकर हम लोगों के पास भेज देने से काम हो जायगा!"

"लिखकर भेजने की जरूरत है? यह प्रस्ताव सुन्दर है, बिल्कुल अकाट्य है!"

"देखो, लिख कर भेज देना, यही करना पड़ेगा।"

मृण्मयी की भविष्यवाणी पूरी होते देर नहीं लगी। पन्द्रह दिनों में ही प्रमोद ने अनुभव किया "कुछ मानो खो गया है, जीवन विफल होता जा रहा है!" अपने हृदय का उद्‌गार कापी में लिखकर रखने की कोई सार्थकता ही नहीं है, तृप्ति ही नहीं है। किसी को न सुनाने से यह प्रभाती-गान सचमुच ही विफल हो जायगा। केवल यही नहीं, अनु-मिनू का साथ छूट जाने के प्रसंग में उसने 'क्षण संगी' शीर्षक देकर एक कविता लिखी है।

उन दोनों के पास इस कविता को भेजे बिना दूसरा उपाय ही क्या है ? इसीलिए प्रमोद ने आज अपनी वह कविता चिट्ठी के कागज पर उतार डाली और अनू-मिनू के पास उसी दिन उसने भेज दी।

अनू-मिनू ने कविता-प्राप्ति के उत्तर में आनन्द और उत्साह से प्रमोद को लिखा कि अपनी रचनाएँ बराबर हमारे पास भेजते रहना। किन्तु अनू ने यह भी लिख भेजा था कि, "भैया, इस तरह के पद्य मत लिखा करो, तुम्हारे पैरों पर गिरती हूँ ! जब मिनू बहन चिल्ला-चिल्लाकर पढ़ रही थी, मुझे सुनकर रुलाई आ रही थी !" अनू के इस विशिष्ट मन्तव्य से इस बार प्रमोद ने मन ही मन अनू को ही 'समझदार' की संज्ञा प्रदान की।

पूजा की छुट्टियों में, गरमी की छुट्टियों में घर आने पर इन लोगों की कविता—चर्चा इस प्रकार लगातार बढ़ती ही चली जा रहा थी। किन्तु शीघ्र ही समिति की एक सदस्या को हट जाना पड़ा। अनू को ससुराल से आये अनेक दिन बीत चुके थे। बालिका समझकर ही उसकी सास अब तक चुप थीं। किन्तु उन्होंने पतोहू को अब छोड़ रखना उचित नहीं समझा। उन्होंने वधू को बुलाने का प्रस्ताव भेज दिया।

अनू के ससुराल जाने का जो दिन नियत हुआ, उस दिन प्रमोद अपने कमरे में खाट पर लेटा हुआ रवि बाबू की एक ग्रन्थावली पढ़ रहा था। बालिका कन्या का ससुराल जाना कितना मर्मस्पर्शी होता है कि इस देश के साहित्य में साहित्य-कारों की लेखनी से उसके करुण मधुर रस का वर्णन विशेष रूप से पाया जाता है। अनू और उसकी माता की वेदना से आज

सभी आत्मीयजनों के नेत्र अश्रुपूर्ण हो गये। प्रमोद का मन भी आज उदास हो गया था, किन्तु छोटी बहन ससुराल जा रही है, इसके लिए बेचैनी प्रकट करने में वह लज्जा अनुभव कर रहा था। इसीलिए वह एक काव्य लेकर मन बहलाने की चेष्टा कर रहा था।

एकाएक प्रमोद को पैताने के पास किसी की आहट मिली। तुरन्त ही 'छोटे भैया' शब्द सुनकर प्रमोद उठ बैठा। उसने कहा—"अनू! क्या कहना चाहती है?" अनू कुछ भी बोल न सकी। केवल उसकी झुकी हुई आँखों से टपाटप आँसू की बूँदें फर्श पर गिर पड़ीं! प्रमोद घड़ी की तरफ देखकर समझ गया—बिदाई का समय हो गया है। अपनी दुर्बलता को छिपाने के लिए प्रमोद ने मुँह से कोई बात नहीं निकाली। अनू ने आगे बढ़कर प्रमोद के पैरों पर माथा रखकर प्रणाम किया। तो भी प्रमोद नीरव रहा! बाहर से रूँधे स्वर से माँ ने पुकारा—"आओ बेटी, समय बीत रहा है।" अनू आँचल से मुँह ढककर जाने लगी। अब प्रमोद भर्रायी हुई आवाज में बोला—"चिट्ठी लिखते रहना।" अनू सिर हिलाकर खड़ी हो गयी। उसका मनोभाव प्रमोद समझ गया। वह बोला—"मैं भी लिखूँगा। पहुँचते ही मिहिर बाबू से समाचार भेजने को कह देना।"

अनू ने कुछ भी नहीं कहा। वह चुपचाप सम्मति प्रकट करके चली गयी। साथ जाने से लड़कपन की दुर्बलता प्रकट होगी इस आशंका से प्रमाद उसके साथ नहीं गया। मेज के पास जाकर कागज पेन्सिल लेकर लिखने की चेष्टा करने लगा। उसी समय मृण्मयी ने आकर कहा—"देखूँ तो प्रमोद भैया, तुमने नयी कविता कैसी लिखी है?" प्रमोद ने आँखें ऊपर उठाकर देखा

कि मृण्मयी के दोनों नेत्र आँसू से डबडबाये हुए हैं। प्रमोद के मुँह से कोई बात निकालने के पहले ही मिनू उसकी कापी पर झुक पड़ी और कविता पढ़ने लगी।

कविता में बिदाई का करुण चित्र था। पढ़ने के साथ ही मृण्मयी धीरे से बोल उठी—"सचमुच भैया! तुमने ठीक भाव व्यक्त किया है। जाते समय अनू ने मुझसे एक भी बात नहीं कही। मुझे इसके लिए पहले दुःख हुआ, किन्तु अब समझ रही हूँ कि आँखों से ही उसने अपने मन की बातें व्यक्त कर दी थीं। किन्तु यही छोटी सी कविता! और क्या नहीं है। फिर दूसरे पन्ने पर उसकी नजर पड़ी तो वह एक बहुत बड़ी कविता देखकर एकाग्र मन से पढ़ने लगी। पूरी कविता पढ़ लेने पर थोड़ी देर तक वह स्तब्ध हो रही। उसकी आँखों में फिर आँसू भर आया। क्षीणस्वर से वह बोली—"प्रमोद भैया! यह कविता तुमने क्यों लिखी? यह तो ठीक नहीं हुई!"

प्रमोद ने श्रान्त स्वर से कहा—"मेरा मन विचित्र दशा को पहुँच गया है। अनू के ससुराल चले जाने से ही यह दशा हुई है, ऐसी बात नहीं है। यह दुःख एक तरह से अदैहिक है—इसका कोई हेतु नहीं है। फिर भी यह है। मालूम हो रहा है कि हमलोगों के पारस्परिक जीवन का स्वतंत्र मार्ग किसी ने अंकित कर दिया है। इस स्वतंत्र मार्ग से अनू चली गयी है, तुम भी जाओगी, मैं भी जा रहा हूँ। इसी कारण किसी निर्दिष्ट विषय या व्यक्ति के बारे में इस कविता की रचना मैंने नहीं की है। यह केवल मेरे मन का भाव व्यक्त करती है। मुझे जान पड़ता है, मेरी जीवन-धारा अन्त में एक ऊसर मरुभूमि में मिल जायगी।"

व्यंग से पूर्ण चेहरा लिए उसी समय मनीश आ गया। उसे देखकर प्रमोद को आज खुशी हुई। वह बोल उठा—"आओ मनीश।"

मृण्मयी घबड़ाहट में पड़ गयी। मनीश की कटु आलोचनाओं से वह बराबर ही चिढ़ जाती थी। काव्यरसास्वादन में आज भी विघ्न देखकर वह मन ही मन बहुत ही नाराज हुई। उसने कहा—"माँ ने शीघ्र ही घर लौट जाने की चेतावनी दी थी प्रमोद भैया, अब मैं जा रही हूँ।" यह कहकर वह तेज कदम बढ़ाती हुई उस कमरे से चली गयी। प्रमोद को कुछ भी बोलने-टोकने का उसने अवकाश ही नहीं दिया।

मनीश उसके मन का भाव समझ गया। एक कुर्सी खींचकर वह बैठ गया। वह बोल उठा—"काव्यचर्चा का यह फल देखो। इन नादान लड़कियों के साथ काव्य की आलोचना का परिणाम कैसा हो रहा है। बेचारी मिनू को तुमने ऐसा बना डाला है कि मुझे देखते ही वह भाग गयी।"

प्रमोद विचलित हो उठा, बोला—"क्या अनापसनाप बोलते हो मनीश ?"

"तुम तो समझते हो कि मनीश के साथ काव्यचर्चा राख में घी डालना है ? किन्तु इस राख में घी डालना कितना निरापद है यह तो तुम नहीं समझते। तुम तो अग्निशिखा धारण करने वाली बालिकाओं के साथ काव्य का घी डालना पसन्द करते हो। इसबार धक्के को सँभालो तो समझूँ ?"

प्रमोद का चेहरा लाल हो उठा। उसकी यह दशा देखकर मनीश को और भी खुशी हुई। सिर हिलाते-हिलाते उसने कहा—"इतना डरते हो क्यों ? पाप का प्रायश्चित्त कर डालो।

फिर तो इस अदैहिक व्यथा से कष्ट न मिलेगा। मृण्मयी तो अभी क्वाँरी है। मैं जैसा रंग-ढंग देख रहा हूँ उससे सब समझ रहा हूँ। बड़ी चाचीजी से मैं कह दूँ क्या ?"

"चुप रहो, चुप रहो, नहीं तो मार खाओगे।"

५

प्रहार की धमकी देकर प्रमोद ने मनीश का मुँह बन्द कर दिया जरूर, किन्तु उसका हृदय अप्रत्याशित रूप से प्राप्त इस अभिनव उपभोग्यवस्तु को सहज में ही छोड़ देने को राजी नहीं हुआ। उसका तरुण-कवि-प्राण नव-यौवन की इस उन्मादना को, इस विचित्र रसानुभव को काव्य—जगत् से उतरकर सहसा अपने मन के पास यथार्थ रूपसे खड़ा होते देखकर स्तब्ध हो गया। किन्तु प्रलुब्ध होने में भी बहुत देर नहीं लगी। मनीश व्यंग्योक्ति के जरिये उसके कानों में जो रस डाल गया, वही रस देखते-देखते उसके हृदय के एकदम भीतर विप्लव मचाने लगा। वह बार-बार सोचने लगा—"मनीश कैसा पाजी है—छिः छिः, मिनू तो अनू की सहेली है! छोटी बहन सरीखी है। कविता सुनने में रुचि है, कहानियाँ सुनना पसन्द करती है, इसीलिए आती है वह क्या मुझे ? छिः-छिः, यह हो ही नहीं सकता। मनीश का यह बिलकुल ही मजाक है! किन्तु उसका मन कहने लगा—"यह बात क्या इतनी असम्भव है ? संसार में क्या यह घटना बिलकुल ही असंगत है। वरन् यही तो बहुत सम्भव है।"

नायक-नायिकाओं की कितनी ही ऐसी बातें प्रमोद को याद पड़ने लगीं। क्रमशः प्रमोद के मन में यह विश्वास दृढ़ होने लगा।

दोपहर का समय था। ठीक उसी समय प्रति-दिन मृण्मयी प्रमोद के कमरे में आती थी। आज प्रमोद का मन व्यथित अनुभव करने लगा। अकारण लज्जा से उसके चेहरे पर लाली छा गयी। उसके मन में यह विचार आया कि मृण्मयी का न आना ही अच्छा है। आज कैसे मैं उससे बातचीत करूँगा! पता नहीं, वही क्या कहेगी, क्या करेगी। ओह! यह तो बड़ी लज्जा की बात है। उसका न आना ही ठीक होगा!

ऐसी ही चिन्ता में वह डूबा हुआ था कि एकाएक उसने चकित होकर देखा कि मृण्मयी के आने का समय बीत गया। दोपहर का समय बीत गया, तीसरा पहर आ गया, फिर संध्या हो चली। स्पष्ट रूप से मालूम हो गया कि मृण्मयी के आने की सम्भावना नहीं है। उस दिन शाम को मनीश के साथ टहलने के लिए जाने की भी उसे इच्छा नहीं हुई। उसने कहा—"टहलने की इच्छा मुझे नहीं है। मनीश ने व्यंग्योक्तियों की बौछार करना नहीं छोड़ा, किन्तु सब सहकर भी वह अपने कमरे में ही पड़ा रहा। शाम का समय घर ही पर बीत गया। सारा दिन वह यही चाहता रहा कि मिनू न आती तो अच्छा होता। किन्तु संध्या होते ही वह दूसरी बात सोचने लगा। वह क्यों नहीं आयी? क्या सचमुच वही उसका मनोभाव बदल गया है? उसी लज्जा से क्या मिनू नहीं आयी। मनीश के मजाक से ही क्या उसका मन बदल गया है?

इस प्रकार तीन दिन बीत गये। चौथे दिन प्रमोद को चकित

करके मृण्मयी आ गयी। उसके हास्योज्ज्वल चेहरे में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ था। उसकी बालिका-सुलभ-चंचलता ने आज प्रमोद को एक प्रकार का आघात किया। यह किस बात का आघात था यह बात प्रमोद समझ न सका। मृण्मयी को इस दशा में देखने की आशा प्रमोद को नहीं थी। उसने इसी कारण डरते-डरते पूछा—"तुम फिर आ गयी मृण्मयी ?"

मृण्मयी ने जरा आश्चर्य के साथ कहा—"वाह ! रोज ही क्या आऊँगी ?"

प्रमोद ने जरा स्तब्ध रहकर पूछा—"इधर कई दिनों से तुम आती नहीं थी ?"

मृण्मयी जरा लज्जा की हँसी के साथ बोली—"नहीं, आती नहीं थी।"

"इसीलिए तो पूछता हूँ क्यों नहीं आती थी ?"

"माँ ने तो मना किया था ?"

"क्यों मना किया था ?"

"ओः मैं इतना बकवाद नहीं कर सकती। इधर कई दिनों से तुमने क्या लिखा प्रमोद भैया ?" यह कहकर मिनू टेबिल पर रखी हुई कापियों पर झुक पड़ी।

प्रमोद ने उसकी तरफ देखते-देखते कहा—"चाची ने तुमको क्यों मना किया था, पहले यही बताओ, पीछे दूसरी बात सुनूँगा !"

"वे तो योंही कड़ी बातें कह रही थीं। केवल यही उनकी आपत्ति थी कि तू अब सयानी हो गयी, वहाँ जाना अच्छा नहीं मालूम होता। अनू नहीं है अब तू किसलिए जायगी ?—वाह देखा तो यह भी क्या कोई कारण है ? इसीलिए क्या मैं नहीं आऊँगी ?"

"आज तुमको उन्होंने क्यों आने दिया !"

"मैं अपनी सखी बकुल के घर जा रही हूँ' कहकर मैं यहाँ चली आयी हूँ। उनको मना करने दो। प्रमोद भैया, तुमने जो कविता लिखी है मुझे दिखाओ तो ! तुम क्या सोच रहे हो ?"

"मैं सोच रहा हूँ मृण्मयी ! तुम इस तरह अब मत आया करो।"

"आऊँगी नहीं ? क्यों ?" मृण्मयी के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा।

"नहीं, माँ ने जो कुछ कहा है, वही शायद ठीक है ! तुम अब बड़ी हो गयी हो ! मेरे पास तुम्हारा इस तरह..."

"तुम क्या कहते हो प्रमोद भैया—बड़ी तो सभी हो गयी हैं ! मनू दीदी बड़ी हुई है, अनू भी तो बड़ी हो गयी है ? मैं तो अनू से उमर में बड़ी हूँ तो बराबर बच्ची ही कैसे बनी रहूँगी ? किन्तु इससे क्या ?"

"इससे क्या ? यह भी तुमको समझना पड़ेगा ! नहीं मिनू, इससे शायद तुम्हारी हानि होगी ! चाची ने ठीक ही कहा था। तुम फिर मत आना !"

मृण्मयी स्तम्भित हो गयी। सोचने लगी—"प्रमोद भैया यह कैसी बात कह रहा है ? मेरा नुकसान होगा ? बात क्या है ? निन्दा करेंगे ? यही बात है क्या ? जिन लोगों को कोई काम-काज नहीं है, वे ही लोग निन्दा करना जानते हैं। अनू तो बराबर प्रमोद के पास आती थी, कोई भी कुछ नहीं कहता था। मैं पराये घर की लड़की हूँ इसीलिए इतनी बातें ? लोग तो बड़े ही पाजी हैं, क्या मैं प्रमोद की कविता भी न सुनूँगी ! वाह ! प्रमोद भी तो विचित्र आदमी है। स्वच्छन्दता से कह रहा है कि मत

आना। क्या उसकी कविता न सुनने से किसी का दिन ही न बीतेगा। अच्छा मैं अपना आना बन्द ही कर दूंगी।''

देखते-देखते अभिमान से मृण्मयी की दोनों आँखें आँसूओं से भर गयी। वह पीछे को मुड़कर खड़ी हो गयी। प्रमोद आश्चर्य के साथ बोल उठा—"यह क्या, तुम रो रही हो क्या मिनू ?''

"रोने की मुझे क्या जरूरत है! तुम्हारी कविता न सुनने से मेरा क्या बिगड़ता है !'' मिनू ने यह कहकर अपनी आँखें पोंछ डालीं। प्रमोद मन ही मन मानों बोल उठा—''सचमुच सभी तो यही बात कह रहे हैं—यह तो अन्याय है! मिनू! क्या सचमुच तुम रो रही हो ?''

"नहीं, नहीं, रोऊँगी क्यों ? तुम यदि यही व्यवहार रखोगे तो अब कभी न आऊँगी। अनू को यदि तुम कहते कि 'मेरे पास मत आना' तो क्या उसको दुःख नहीं होता। क्या उसे रुलाई नहीं आती ?''

"यही बात है क्या मिनू ? मनीश ने क्या बातें कहीं ? तुम समझ नहीं सकती ? किन्तु मुझे समझना चाहिये। पीछे तुम्हारा किसी तरह का नुकसान न हो !''

"इस बार मानो मृण्मयी कुछ समझ गयी। वह 'दुत' कहकर तेज दौड़ती हुई चली गयी। मृण्मयी ने यह शब्द लज्जा से रंज होकर कहा, प्रमोद कुछ भी न समझ सका। वह मूढ़ की तरह ताकता रहा।

एक. दिन दो दिन करके एक सप्ताह बीत गया। मृण्मयी का आना रुक गया। सहसा एक दिन प्रमोद को खबर मिली कि अगले सप्ताह में ही मृण्मयी का विवाह होनेवाला है। वर

कुछ कड़ी उमर का है। विधुर है। दूसरा विवाह कर रहा है। घर की अवस्था अच्छी है। ऐसा घर-वर मिलने के कारण मृण्मयी के आत्मीय जनों को बड़ी खुशी हुई। पितृहीन बालिका के लिए यह कम सौभाग्य की बात नहीं थी।

मनीश ने हँसते-हँसते कहा—"क्या जी निराश युवक! कविता-रचना चल रही है क्या? उस तरफ से कोई खबर मिली? जो भी हो, तुमको कविता रचना की सामग्री तो खूब जुट गयी। इसके सिवा इस प्रेम की सार्थकता और क्या हो सकती है?" प्रमोद मनीश के व्यंगपूर्ण मजाक से कुपित होकर बोल उठा—"क्यों? मान लो, यदि मैं उसके साथ ब्याह करना चाहूँ तो! माँ कल ही कह रही थीं। कहीं से विवाह की वार्ता आई है, वे शीघ्र ही मेरा विवाह करेंगी। अच्छी बात है यदि मैं मृण्मयी के साथ ही ब्याह करना चाहूँ?

मनीश हँसने लगा। बोला—"कवि लोग क्या तुम्हारी ही तरह बेवकूफ होते हैं? तुम लोग हो राढ़ी और वे लोग हैं वारेन्द्र। तुमको क्या होश है?"

प्रमोद ने और उत्तेजित होकर कहा—"भले ही हों राढ़ी। अब तो पद्मा नदी को पार ही करना कोई कठिन काम नहीं है। वारेन्द्र भूमिका ब्राह्मण राढ़ देश में आ नहीं सकता, इसलिए क्या ब्याह न हो सकेगा? जब ये सब बाधाएँ थीं तभी ये बन्धन थे।

किन्तु ये बन्धन तो अब उस सुदुस्तरा पद्मा की अपेक्षा भी दुर्लंघ्य हो चुके हैं, पागल! तुम्हारी या मेरी सामर्थ्य कहाँ है कि इन बाधाओं को अतिक्रम करें।"

"क्यों सामर्थ्य न होगी? हमलोग क्या मनुष्य नहीं हैं। इन

नियमों को तोड़ना कोई कठिन काम नहीं है। मैं ही इसका उदाहरण दिखाऊँगा।"

"इससे अच्छा तो तुम्हारा कवि बनना ही था। समाज-सुधारक बनोगे, तो बहुत ही गड़बड़ी मचाओगे, अशान्ति फैलाओगे। मेरा कहना है कि तुम कविता में मन लगाओ, तुम्हारा हृदय साफ हो जायगा। नहीं तो तुम्हारे इस नये उपद्रव से आत्मीय स्वजनों को अच्छी तरह नींद भी न आयेगी।"

"देखो मनीश, तुम कभी यह ख्याल मत करना कि मैं कविता लिखकर ही जीवन बिताऊँगा। मैं यदि यह सुधार कर सकूँ तो समाज का बड़ा उपकार होगा। ब्राह्मण-ब्राह्मण में यह श्रेणी-विभाग देश का कम नुकसान नहीं करता।"

मनीश ने जरा रुककर अन्त में कहा—"यह तो मैं जानता हूँ, किन्तु यह असम्भव है, प्रमोद। तुम यह काम कर न सकोगे। बीच में माँ-बाप के साथ मनमुटाव खड़ा कर दोगे। कम से कम दस प्रतिशत आदमी समाज-सुधार के इस काम में मन लगावेंगे, तभी यह सुधार सम्भव होगा। इस समय तो हम लोगों का यह परिश्रम व्यर्थ सिद्ध होगा। विशेषतः जब कि इसके भीतर प्राणों की कोई प्रेरणा नहीं है। तुम्हारे मन की यह कल्पना मात्र है। इतने बड़े काम में हाथ डालना साधारण कार्य नहीं है।"

दोनों में तर्क का वेग बढ़ चला। मूल विषय जहाँ का तहाँ पड़ा रहा। तर्क के प्रबल श्रोत में दोनों बहते चले जा रहे थे। कहाँ चले जायँगे, इसका ठिकाना ही नहीं था। उसी समय प्रमोद की माँ वहाँ आ गयीं। उन्होंने दोनों को भोजन करने को कहा। मनीश के मुँह से तर्क का विषय सुनकर वे आश्चर्य से स्तब्ध हो गयीं। उन्होंने और कुछ न कहकर केवल यही कहा—"अरे

पागल ! हमलोगों के मतामत की बात यदि छोड़ भी दो तो, जिनकी लड़की है उनकी सम्मति के बारे में भी क्या कुछ नहीं सोचते। वे लोग क्यों राजी होंगे ? ये सब काम वहाँ ही होते हैं जहाँ इसके लिए उपयुक्त शिक्षा रहती है। लड़के-लड़कियों में इतना साहस होता है कि स्वतंत्र रूप से इन बाधाओं को तोड़ने में वे तत्पर हो जाते हैं। तुमलोग शायद अपने को इसके लिए उपयुक्त समझते हो। किन्तु हमारी लड़कियों को अभी क्या इतनी शिक्षा मिली है कि विवाह के सम्बन्ध में वे अपना मतामत माता-पिता के सामने व्यक्त कर सकें। और उनके विचार जानने की चेष्टा ही कौन करेगा ? मिनू तो मेरी अनू की अपेक्षा उमर में कुछ बड़ी होती है। किन्तु वह क्या कहेगी कि मुझे माँ-बाप की सम्मति की जरूरत नहीं है। मैं स्वेच्छा से विवाह करके समाज-सुधार करूँगी।''

प्रमोद लज्जित होकर निरुत्तर हो गया। मनीश हँसते-हँसते बोला—''यह आपका ख्याल गलत है, चाची जी। आजकल की लड़कियाँ बहुत आगे बढ़ गयी हैं। वे काव्य समझने की शक्ति रखती हैं।''

''तुम लोग क्या कहना चाहते हो ?''

प्रमोद बोल उठा—''मनीश, यह तुम कैसी बातें करते हो ? नहीं माँ, इसकी बातों का तुम कुछ ख्याल मत करना। मेरे ही मन में यह विचार आया है कि राढ़ी-वारेन्द्र ब्राह्मणों में परस्पर विवाह की रुकावट न रहनी चाहिए। इस रुकावट के उठ जाने से देश का बहुत बड़ा कल्याण होगा। समाज का बहुत उपकार होगा। मेरे विवाह की तो इतनी चर्चा हो रही है। मुझे ही इस बड़े काम को करने दो न ?''

"क्यों वारेन्द्र श्रेणी के ब्राह्मण लोग क्या राढ़ी श्रेणी के ब्राह्मणों के साथ विवाह चलाने को राजी हैं?"

"यदि ऐसी बात होती तो चिन्ता ही क्या थी माँ? इस प्रथा को चलाने का भार तो हमलोगों को लेना पड़ेगा। और तुम लोगों को भी मुझे इस सम्बन्ध में अनुमति देनी पड़ेगी। तुम भी आपत्ति न कर सकोगी और न तो बाबू जी ही कर सकेंगे।"

"अच्छा हमलोगों की बात बाद को होगी। तुम पहले किसी वारेन्द्र लड़की के पिता को राजी करो तो बेटा, फिर देखूँ।" यह कहकर माता कुछ क्रोध के साथ चली गयीं।

"किन्तु मिनू के मन का तो कोई ठिकाना ही नहीं है कि वह क्या चाहती है। हो सकता है कि केवल कविता सुनने के ही झोंक से वह—"

बीच ही में रोककर प्रमोद बोला—"ओः, छोड़ो न इस बात को। जिस बड़े विषय पर ध्यान गया है, उसीपर मैं इस समय विचार कर रहा हूँ।"

"किन्तु मिनू की माँ तो इस विवाह में राजी न होंगी। जिस काम को करने का साहस पुरुषों को नहीं होता, उसे वे विधवा स्त्री होते हुए कैसे करने को तैयार होंगी। बीच में हो सकता है कि उस लड़की के बाप से दस आदमी कलंक फैलाने लगेंगे। सीधी-सादी बालिका सर्वदा तुम्हारे पास आती थी। लोग सोचेंगे अंग्रेजों की तरह प्रेम की कारवाई ही चलती रही होगी।"

प्रमोद चुपचाप विचार करने लगा।

६

कर्तव्य निर्णय करते-करते ही प्रमोद ने एक सप्ताह बिता दिया। मृण्मयी के विवाह का भोज खाकर मनीश ने आकर कहा—"समाज सुधार की आशा तो समाप्त हो गयी। लाओ हारमोनियम, कुछ गाकर तबीयत बहलायी जाय।"

प्रमोद ने उसे एक धक्का लगाकर हटा दिया।

"वर बनकर कोहबर में तुम अपनी कविता सुनाओ; यही आशा मैंने की थी।"

प्रमोद ने रंज होकर कहा—"तुमको तो मिनू, भैया कहकर पुकारती थी न ?"

"और आपको ?"

"चुप रहो मनीश। छिः छिः चुप रहो। तुमने ही तो मजाक करते-करते मेरे मन में सन्देह पैदा कर दिया था। तुम्हारा ही दोष है।"

"जी हाँ, यह तो मैंने अच्छा ही किया था। जिस तरह की कविता का रस तुम पिला रहे थे, उस रसको पीकर बचना कठिन है। सीधी-सादी लड़की थी, इसीलिए बच गयी। सुधार की धुन किस मतलब से सवार हुई थी ?"

"मिनू के ही कारण मुझे उसमें रुकावट पड़ी। नहीं तो यह काम मजाक करने योग्य नहीं था। यदि यह काम हो गया होता तो कितना बड़ा काम होता, इसे तुम समझ सकते हो। छोड़ो इस चर्चा को।"

"अच्छा तो तुम कविता ही रचना करो। इसके सिवा तुम्हारे लिये दूसरा कोई रास्ता तो मैं नहीं देखता।"

प्रमोद थोड़ी देर तक चुप ही रहा, फिर पहले की ही तरह मीठे स्वर में बोला—"मैं तुमसे कहता हूँ कि मेरी कविता के बारे में तुम मुझसे मजाक मत करो। मुझे इससे बड़ी चोट लगती है। तुम तो कविता का मर्म समझते ही नहीं। अनू-मिनू समझती थीं। इसी कारण उन दोनों के ही सामने मैं अपनी यह नशा मिटाया करता था।"

प्रमोद की बात सुनकर मनीश को दुःख तो हुआ जरूर; किन्तु वह एकाएक ठठाकर हँस पड़ा और प्रमोद की पीठ पर एक थपकी लगाकर बोला—"मित्र का मजाक भी तुम सह नहीं सकते? क्या मित्र की रचना सुनकर भाँड़ की तरह 'क्या बात! क्या बात!" कोई कहता रहेगा? और तुम कवि हो क्या? तुम यदि कवि हो, तो गधा भी कविता लिख सकेगा।"

प्रमोद ने लज्जित होकर कहा—"ठीक कहते हो। किन्तु हँसी मजाक हरदम नहीं चल सकते। समझने में कोई साझेदार होना चाहिये।"

"समझ क्या सभी की एक ही तरह की होती है? बराबर से ही तो जानते हो; मैं विचित्र स्वभाव का आदमी हूँ। इसीलिए क्या मेरी मित्रता भी झूठी है? इसके जोर से भी क्या मैं तुमको कुछ न कहूँगा।"

प्रमोद ने हार मानकर तर्क बन्द कर दिया। तर्क करने में वह दक्ष नहीं था। मनीश से वह बराबर ही इस तर्क नें हार मान लेता था।

इसके बाद प्रमोद ने जो कविता लिखी, उसको किसी ने देखा भी नहीं, सुना भी नहीं। अनू कभी अनुरोध करके माँगती थी, तो वह जवान देता था कि अब मैं कविता नहीं लिखता।

सोचता था, बहनोई मिहिर भी यदि मनीश की ही तरह रसहीन हों, तो क्या फल होगा ?

छुट्टी बीत जाने पर प्रमोद कलकत्ता जाने को तैयार हुआ। एकाएक उसकी नजर पड़ गयी—वस्त्रालंकार-सज्जिता मृणमयी पर। वह उसकी माँ को प्रणाम कर रही थी। माँ ने आशीर्वाद देकर कहा—"एक ही महीने बाद ससुराल वालों ने मायके भेज दिया। अभी नादान बच्ची है, इसका भी ख्याल रखना ही पड़ेगा।"

मृणमयी ने हँसकर मुँह झुका लिया। माँ ने कहा—"अपने भैया को तुम प्रणाम नहीं किया मिनू ?"

प्रमोद समझ गया कि मिनू लजा रही है। बड़ी चाची का आदेश पाते ही वह झटपट प्रमोद के पैरों पर गिर पड़ी। प्रमोद उसकी तरफ देखने में भी लज्जा अनुभव कर रहा था। कुछ बोलना आवश्यक था। उसने पूछा—"अच्छी तरह हो तो ?"

"हाँ।"

"मिनू ने इसके बाद प्रमोद की माता की तरफ मुँह फेरकर कहा—"अनू कब आवेगी बड़ी चाची ?"

"अभी क्या वे लोग बिदा करेंगे बेटी। अभी तो डेढ़ ही महीने बीते हैं। पूजा के समय भेज देते तो अच्छा होता। मेरी समधिन बड़ी अच्छी हैं; किन्तु उनको तो वही एक ही पतोहू है। मुझे भी तो इसका ख्याल रखना पड़ेगा।"

"लाओ माँ। तुमने अँचार, अमावट सब इच्छानुसार दे दिया तो ? अब रहने दो बोझा मत बढ़ाओ।"

"कोई ज्यादा तो नहीं है बेटा। ले जाओ। दोनों भाई

मिलकर खाना। थोड़ा-सा अच्छा घी दे रही हूँ। कलकत्ते में क्या ऐसा घी तुमको मिलेगा ?"

मृण्मयी ने पूछा—"तुम क्या आज ही कलकत्ता जा रहे हो प्रमोद भैया ?"

"हाँ रे ?"

"तुमने और कितने पद्य लिखे हैं प्रमोद भैया ?"

"एक भी नहीं"—कहकर लम्बी साँस खींचकर प्रमोद उस कमरे से चला गया। माँ ने कहा—"अब क्या खेलने-कूदने की छूट पहले की तरह तुम लोगों को दी जावेगी बेटा ? इस वर्ष तो बिलकुल ही गुञ्जाइश नहीं है। परीक्षा हो जाने दो। इसी बीच में दो-चार जगहों में कन्या की तलाश करती हूँ। प्रमोद का ब्याह कर देने से ही मैं निश्चिन्त हो जाऊँगी। तीन बाहुओं को लेकर मनुष्य जन्म की साध मिटा डालूँ।"

नयी बहू को लाने के प्रस्ताव से मृण्मयी बड़ी चाची के पास कुछ देर के लिए बैठ गयी और इधर हाल में प्रमोद भैया के ब्याह की बातचीत हुई है या नहीं, कौन लड़की कैसी है, इत्यादि गंभीर विषयों पर आलोचना करने लगी। प्रमोद भैया की कविता की बात उसके मुँह से नहीं निकली। वह बड़ी चाची के मुँह से नयी खबर जानकर अनू को बताकर उसको खुश करने की इच्छा से व्यस्त हो उठी।

× × ×

मिनू के विवाह का समाचार पाकर और अपने छोटे भैया के विवाह की सम्भावना के बारे में सुनकर अनू मायके जाने के लिए दिन गिन रही थी। कब पूजा का समय आवेगा, वह वहाँ

जा सकेगी, यही उसकी चिन्ता का विषय हो गया। पूजा क्रमशः निकटतर आने लगी। किन्तु सासजी ने इस बार कह दिया—"इस बार बहू, तुमको यहीं रहना पड़ेगा। प्रतिबार ही तो नैहर जाती हो—इस बार रहो।"

बहू ने भर्राये स्वर से कहा—"छोटे भैया घर आने वाले हैं?"

"आने दो न! यहाँ घर की पूजा तुम एक बार भी नहीं देखती। अपनी माँ को लिख दो, इस बार तुम मेरे पास रहोगी।"

अब थोड़ी देरतक चुपचाप बैठी रही। फिर उठकर पान लगाने चली गयी। बहू का मलिन मुँह देखकर सास जरा व्यथित हुई। इतने दिनों तक वे बहू को उसकी इच्छा के अनुसार नैहर जाने देती थीं। एकमात्र बहू रहने के कारण उसके आदर का अन्त नहीं था। अनू भी सास से यथेच्छ कुछ भी माँगने में हिचकती नहीं थी। सास भी पहले दो-एक बार आपत्ति करती थीं, फिर बहू की बात मान लेती थीं, इसलिए पूजा और गरमी की छुट्टियों में प्रतिबार ही अपने नैहर जाने पाती थी। जब तक उसके छोटे भैया रहते थे, उतने दिन वह स्थिर रहती थी, किन्तु उसके चले जाने पर ससुराल आने में हिचक नहीं करती थी। पति बुलाते थे, तो वह मौन सम्मति प्रकट करती थी। इस बार अनिवार्य कारण से मझले भैया के विवाह के बाद ही उसे ससुराल आना पड़ा। इस कारण इसे आशा थी, कि पूजा के समय अवश्य ही जा सकेगी।

बहूका व्यथित मनोभाव देखकर दूसरे दिन सास ने कहा—"अपने छोटे भैया को लिख दो न—इसबार वे पूजा में यहीं आ

आँय। मैंने भी कभी उसे देखा नहीं है। देखने की इच्छा हो रही है।"

अनू ने परम आनन्द के साथ उसी दिन प्रमोद को पत्र लिख दिया। चार-पाँच दिनों के बाद उत्तर आया प्रमोद ने लिखा था—"इस बार परीक्षा होने वाली है। 'आनर्स' लिया है तुम तो जानती हो। इस बार तो मैंने घर न आऊँगा अनू, इसलिए तुम्हारे यहाँ भी न आ सकूँगा। बहन, दुःख मत मानना। इसके बाद किसी समय आऊँगा।"

अनू ने उदास होकर सास को खबर दी। सास ने कहा—"आने से अच्छा होता, एक बार देख लेती। तो तुम इस बार यहीं रहो।" सिर हिलाकर अनू ने अपनी सम्मति दे दी।

मिहिर ने यह खबर सुनकर हँसते-हँसते कहा—"कहीं खूब-खूबी, कहीं हाय-हाय! तुम मेरे ऊपर ही नाराज हो रही हो न अनू?"

अनू—"वाह! तुमने क्या किया है? मैं नाराज होऊँगी क्यों?"

"तो फिर दिन-रात इस तरह मुँह फुलाये रहती हो, क्यों?"

अनू ने कहा—"हटो, मुझे मजाक अच्छा नहीं लगता।" यह कहकर वह अन्यत्र जाने लगी। उसे रोककर मिहिर बोला—"किसी के छोटे भैया नहीं आते, तो इसमें क्या मेरा दोष? मेरा क्या अपराध है?"

"नहीं, मैं तो तुमको कुछ भी नहीं कहती।" अनू का गला गाढ़ा हो आया। आँखें डबडबा गयीं।

मिहिर ने घबड़ाकर उसे छोड़कर कहा—"नहीं, नहीं, मुझसे गलती हो गयी, मैं और कुछ न कहूँगा। तुम रोओ मत।"

यह कहते-कहते मिहिर चला गया। अनू की आँखों का आँसू बह चला। पति से छिपाने के लिए वह जल्दी-जल्दी जाने लगी उसी समय मिहिर ने व्यथित स्वर से पुकारा--"अनू, अनू।"

अनू भाग गयी जरूर, किन्तु पति का स्नेह भरा स्वर उसके किशोर मन पर पूरा असर डाल गया। वह समझ गयी कि इस बार पूजा के समय पतिके पास वह रह सकेगी, इस आशा से वे आनन्द से विभोर हो रहे हैं। किन्तु वह स्वयं चिरकाल के अभ्यस्त माँ-बाप की गोद, और भाई-बहनों के साथ का अभाव अनुभव कर रही है; यह सोचकर वह मिहिर के प्रति लज्जा भी अनुभव करने लगी। फिर मिहिर की आनन्दरश्मि ने धीरे-धीरे उसके हृदय में प्रवेश करके एक तरहके सुख का आभास भी ला दिया।

पूजा बीत गयी। हेमन्त भी समाप्त हो रहा था। अनू की माता कन्या के लिए धीरज खोकर बार-बार पत्र लिख रही थीं। किन्तु बहू का कोई विशेष उत्साह न देखकर सास ने उस बात पर ध्यान नहीं दिया। अन्त में अनू की माँ चुप हो रहीं। मिहिर की खुशी का ठिकाना नहीं रहा, विवाह के बाद अनू इतने अधिक दिन उसके पास कभी नहीं रही। मिहिर भी किशोरावस्था पार करके युवावस्था को पहुँच रहा था। अनू का बालिका-भाव धीरे-धीरे घटता जा रहा था। वह भी उदास नहीं रहती। तो भी, कभी-कभी वह विचलित हो उठती थी।

सचमुच ही एक दिन प्रमोद आ पहुँचा। अनू प्रमोद का हाथ पकड़कर गाड़ी पर जा बैठी। किन्तु सारे रास्ते में उसे एक हँसता हुआ म्लान चेहरा याद पड़ रहा था। उसकी ही स्मृति में वह अन्यमनस्क सी हो गयी।

७

सात-आठ महीनेके बाद इस बार अपने नैहर आकर अनू ने बहुत परिवर्तन देखा। उसकी माँ ने दोनों बहुओं पर गृहस्थी का सब भार छोड़ दिया है। वे बड़े लड़के के बच्चों को ही लेकर अधिकांश समय बिताती हैं। पिता का स्वास्थ्य इतना खराब हो गया है कि वे कुछ भी काम काज नहीं देखते, वैद्यजी की दवा पर निर्भर करके विश्राम करते रहते हैं। बड़े लड़के विनोद ही घर के मालिक बन गये हैं। आश्रित स्वजनों का मनोभाव भी बदला हुआ दिखाई पड़ा। उन्हें भविष्य का चित्र दिखाई पड़ रहा है इसलिए वे नये मालिक और नयी मालकिन की ही तरफ दिन पर दिन झुकते जा रहे हैं।

अनू ने अपनी बाल्यसखी मिनू में और भी अधिक परिवर्तन देखा। मृण्मयी का नारीत्व और उसकी गम्भीरता उससे कहीं अधिक बढ़ गयी है। प्रमोद के सामने घर से निकलने में वह बहुत कुंठित होती है। वह ससुराल में ही अधिकांश समय रहती है। अनू से भेंट करने के ही लिए बड़ी चेष्टा से वह थोड़े दिनों के लिए आयी है।

सबसे अधिक परिवर्तन हुआ है उसके छोटे भैया का। उसकी कविता की कापियों का कहीं भी पता अनू को नहीं चला। मनीश और प्रमोद में तर्क-वितर्क कुछ नये रूप में हो रहे थे। उन दोनों की बातें उसकी समझ में ही नहीं आती थीं।

मिनू ने एक दिन कहा—"प्रमोद भैया अब बहुत पुस्तकें पढ़ते हैं। अब क्या वे पहले की तरह कविता लिखकर दिन बितावेंगे। अब वे मासिक पत्रिकाओं में ऊँचे विचार के निबन्ध लिखते हैं।"

अनू ने बहुत सी मासिक पत्रिकाएँ जुटा ली थीं, उनमें उसने प्रमोद की लिखी कई रचनाएँ देखीं। उनके नाम भी अद्भुत

थे। "देशाचार और धर्म" "राष्ट्रीय-उन्नति" "समाज-बन्धन" इत्यादि उन लेखों के शीर्षक थे। नाम ही इतने कठिन थे कि अपने लिए अपाठ्य समझकर अनू ने मिनू दीदी के लिए उन्हें रख दिया था। उसे आशा थी कि वह पढ़कर कुछ अर्थ बता देगी। किन्तु इस सम्बन्ध में उसे निराशा ही हुई।

जो हो, बहुत दिनों के बाद पिता के घर आने पर अनू के दिन बड़े ही आनन्द से बीत रहे थे। वह सहेलियों से भेंट-मुलाकात करती थी, ससुराल के बारे में उनसे वार्तालाप करती थी, उनके साथ शाम को पोखरे के घाटपर जाती थी, छोटे भैया के कमरे की सफाई करती थी और अधिकांश समय अपनी घनिष्ठ सखी मिनू के साथ बिताती थी। दिन-रात बराबर समय बेरोक-टोक चला जा रहा था। यहाँ तक कि मिहिर की चिट्ठियों का उतर भी नहीं दे सकती थी। मिहिर ने अनू की इस लापरवाही से नाराज होकर एक बहुत बड़ी चिट्ठी लिख भेजी। इस बार अनू को चैतन्य हुआ और आज दोपहर को कागज, कलम, लिफाफा, दवात सामने रखकर अनू पतिके पास पत्र लिखने बैठ गयी।

अनू को विशेष शिक्षा नहीं मिली थी। पति को कैसे पत्र लिखना चाहिये, इसकी पूरी जानकारी उसे नहीं थी। फिर भी उसने अपनी कई संगिनियों से बड़ी चतुरता से पत्र लिखने का तरीका सीख लिया था, किन्तु कभी लिखा नहीं था। इस कारण उसे हिचक मालूम हो रही थी। प्रियतम, प्रियवर, प्राणनाथ, प्राण प्यारे, जीवननाथ, हृदय-सर्वस्व, आदि कितने ही सम्बोधन के शब्द उसने एक-एक करके लिखे और फिर काट डाले। उसके विचार में ठीक कोई शब्द जँचता ही नहीं था। किस शब्द से

सम्बोधित होने पर क्रुद्ध पति का क्रोध शान्त होगा, यही उसकी चिन्ता का मुख्य विषय था।

अन्त में अनू ने लिख डाला—

प्राणनाथ, आपका पत्र मुझे मिला। किन्तु बहुत से कामों में व्यस्त रहने के कारण उत्तर देने में देर हुई इसके लिए—" लिख ही रही थी कि एकाएक मृणमयी आती हुई दिखाई पड़ी। अनू ने झटपट कागज को पुस्तक में छिपा दिया। उस दिन के लिए पत्र लिखना रुक गया। मिनू से बातचीत होने लगी। बेचारे मिहिर के भाग्य में ऐसे ही विघ्न बार-बार पड़ते। मिनू ने आज एक ऐसी खबर दी कि अनू के आनन्द का ठिकाना नहीं रहा। आज दोनों ही माँ को बतावेंगी कि मिनू की ससुराल के घरके निकट ही एक परम सुन्दरी लड़की है। प्रमोद के साथ उसका विवाह हो जाता तो बहुत ही अच्छा होता। लड़की बहुत ही अच्छी है। किन्तु दोष यही है कि गरीब की लड़की है और मातृहीना है। किन्तु ऐसी लड़की साधारणतः दिखाई नहीं पड़ती। गाँव के नाते से वह मृणमयी की ननद लगती थी, इसी कारण वह इतना आग्रह दिखाती थी।

माँ ने सुनकर सन्देह प्रकट करके कहा—"उसकी परीक्षा सामने है। इस साल तो वह राजी होगा ही नहीं।"

"ठीक तो है चाचीजी, परीक्षा हो जाने के बाद जेठ में ही विवाह होगा।"

"पास होगा या न होगा, ठीक जाने बिना वह तैयार ही न होगा।"

"प्रमोद भैया के पास होने में सन्देह! यह तो कभी सम्भव नहीं है? आपको यह प्रस्ताव मंजूर है या नहीं, यही बताइये।"

"मेरी मंजूरी से क्या होगा ? ठहरो बेटी, प्रमोद से पूछती हूँ, देखूँ वह क्या कहता है।"

माँ ने जो आशंका की थी, वही हुई। लड़के ने जो बात कही, उससे तो उनका रो उठना स्वाभाविक था। किन्तु मनीशा ने उनको आड़ में लेजाकर समझाकर कहा—"इस समय उसको ये सब बातें आप मत कहिये। कोई लड़की पसन्द हो जाय, तो ठीक कर रखिये। वह पास तो अवश्य हो जायगा। उसके बाद बिलकुल ब्याह ही शुरू कर दिया जायगा। पहले से ही उसको बता कर उसका दिमाग मत खराब कर दीजिये। नहीं तो उत्तेजित होकर वह कोई अनर्थ भी कर सकता है।"

अन्त में माँ चुप हो रहीं। किन्तु मृण्मयी को अपना मतामत कुछ भी नहीं बताया। केवल यही कहकर उसे उन्होंने आश्वासन दिया कि छः महीने के बाद देखा जायगा।

पन्द्रह दिन बीतते न बीतते सुखपूर्ण गृहस्थी में शोक की कराल छाया पड़ गयी। घरके मालिक का स्वास्थ्य टूट ही चुका था। एकाएक उनपर न्यूमोनियाँ का आक्रमण हो गया। चिकित्सा की त्रुटि नहीं हुई, किन्तु काल का आक्रमण किसी तरह भी रोका न जा सका। कुछ ही दिन भोगकर वे परलोक को चले गये।

यथासमय श्राद्ध—क्रिया भी पूरी हुई। बड़े लड़के विनोद ही घर के मालिक बने, कुमुद उनका सहकारी बना। प्रमोद और किसी तरफ मन न लगाकर केवल माँ को सान्त्वना देने की चेष्टा करता रहता था।

गृहस्थी सदा की भाँति चलने लगी। उसमें तो हेरफेर होने का उपाय नहीं था। बड़े से बड़े शोक भी समय के प्रभाव से दुर्बल हो जाते हैं।

माँ ने एक दिन कहा—"बेटा इस वर्ष तो तेरी परीक्षा है न ? तू इस तरह मेरे पास रहकर समय क्यों नष्ट करता है ?"

"रहने दो माँ इसबार मैं परीक्षा देना नहीं चाहता।"

माँ ने पूछा—"क्यों ?"

"तुम्हारे पास बराबर कौन रहेगा माँ ?"

लड़के का नैराश्य भरा चेहरा देखकर माँ का हृदय तड़प उठा। रुँधे गले से उन्होंने कहा—"इसी कारण तू क्या अपनी भविष्य चौपट कर देगा ? कुमुद जल्द ही कलकत्ता जानेवाला है। तू इस तरह समय क्यों बिता रहा है, तू भी जा ?"

प्रमोद ने सिर झुकाये ही कहा—'नहीं माँ।"

"अनू की सास को चिट्ठी लिख दे, अभी कुछ दिन इसको वहाँ न ले जायँ। अनू मेरे पास रहेगी। मनो के रहने से तो काम न चलेगा, उसको शीघ्र ही जाना पड़ेगा। तू जब तक न आयगा, तब तक अनू मेरे पास रहेगी। और बहुयें भी तो हैं। ननी भी—"

"वे जिस तरह तुमको देखती है, उस हालत में तुम्हें छोड़कर जाने से तो खूब काम बन जायगा। ननी को तो मैं एक दिन भी नहीं देखता। हाँ यदि अनू रहेगी, तो कुछ सुविधा हो सकती है।"

प्रमोद की बात से कुंठित होकर माँ ने कहाँ—"क्यों नहीं बेटा, वह मेरी देख-भाल अवश्य करेगी। अभी तो वह नादान बच्ची है। सिरपर गृहस्थी का भार आ पड़ा है।"

जो भी हो, माँ चाहता हूँ कि तुम पहले की तरह फिर हो जाओ। तुमको इस दशा में देखकर मैं नहीं जा सकता।"

माँ ने दुःख से आँसू रोककर कहा—"पहले की तरह बेटा, पहले की तरह क्या मैं—"

"माँ, मैं सब समझता हूँ, किन्तु मैं यही चाहता हूँ कि, तुम उठो, घूमने लगो, टहलने लगो, खाओ-पीओ। तभी मैं कलकत्ता जाऊँगा।"

पुत्र का माथा गोद में खींचकर माँ ने कहा—"तुम इसके लिए चिन्ता मत करो बेटा। तुम जाओ। परीक्षा देकर आना। तुम और लोगों से भिन्न स्वभाव के हो। तुम्हारे ही लिए मुझे चिन्ता है। मेरे लिए ही तुम अपने जीवन की अवहेलना करोगे; यह तो मुझसे सहा न जायगा।"

मनीश ने भी प्रमोद को समझाया। "इस तरह दुर्बलता दिखाने से तो काम न चलेगा। अपने कर्तव्य में शीघ्र ही मन लगाना पड़ेगा।"

यही बात हुई। एक महीने के बाद माता का भार अनू पर छोड़कर प्रमोद कलकत्ता चला गया। कुमुद पहले ही चला गया था। भाई और बहुओं पर प्रमोद का निर्भर न करना भी उस घर का आलोच्य विषय हो गया था। माँ को कष्ट हुआ जरूर, किन्तु वे किसी को भी कुछ न कह सकीं। कहने का उपाय भी नहीं था। प्रमोद ने एक बार बड़े भाई के पास पत्र लिखकर माँ की अच्छी तरह देखभाल करने का अनुरोध किया था। बड़े भैया और मँझले भैया दोनों ने उसका तिरस्कार किया, फिर इसके बाद प्रमोद बिलकुल ही चुप हो गया। चारो तरफ से अपने मनको खींचकर वह केवल परीक्षा के लिए झुक पड़ा।

परीक्षा दे चुकने पर प्रमोद समझ गया कि उसे सफलता अवश्य मिलेगी। परीक्षा समाप्त होने पर प्रमोद तुरन्त घर चला

आया। घर पहुँचते ही उसने माता के चरणों पर माथा रखकर प्रणाम किया। उसके आने के दो-चार दिन बाद कुमुद भी आ गया। दोनों लड़कों को गोद में लेकर माँ ने आनन्द के आँसू बहाये।

मिहिर भी आये। एक दिन मौका देखकर उन्होंने प्रमोद से कहा—"भाई, अनू के लिए माँ—"प्रमोद ने उसकी बातें समाप्त भी नहीं होने दीं। उसने कहा—"हाँ भाई, इस बार तुम अनू को ले जाओ।"

माँ और भाइयों के पैरों पर प्रणाम करके आँसू गिराते-गिराते अनू मिहिर के साथ चली गयी।

८

परीक्षा-फल निकला। प्रमोद विज्ञान में 'सम्मान' के साथ पास हुआ। कुमुद को 'आनर्स' में सफलता नहीं मिली। प्रमोद ने अनुभव किया कि इस घटना से उसके घर का वातावरण कुछ गरम हो उठा।

कुमुद शीघ्र ही सम्माननीय पद पाने के लिए—विशेषतः डिप्टी मजिस्ट्रेट बनने की धुन में लग गया। मनीश ने प्रमोद से पूछा—"तुम अब क्या करोगे? एम. ए. पढ़ोगे या 'ला' पढ़ोगे?

प्रमोद ने कहा—"तुम तो मुझे अच्छी तरह जानते हो। अपनी सम्मति दो तो; मैं किस रास्ते में जाऊँ। ला पास करके वकील या हाकिम बनने की मुझे विशेष आवश्यकता है या प्रोफेसर, प्रिन्सिपल का पदग्रहण करना ठीक होगा?"

मनीश ने जरा क्रोध के साथ उत्तर दिया—"तुम देश का काम करने और लोक-कल्याण का काम करने का राग अलापते रहते हो तो मैं पूछ रहा हूँ, वकील, हाकिम या प्रोफेसर, प्रिन्सिपल लोग मनुष्य ही नहीं हैं? वे लोग नौकरी करते है इसीलिए क्या देश का काम नहीं कर सकते? जनता की भलाई नहीं कर सकते? तुम्हारी तरह अनाड़ी कवि लोग ही क्या बातों के जोर से इन कामों पर एकाधिपत्य कर चुके हैं?"

"तुम जो चाहो कह सकते हो। मैं तो जैसा-तैसा तुच्छ कवि भी नहीं हूँ। मैं तो कवियों के दल से बाहर चला आया हूँ मनीश।"

"यही तो देख रहा हूँ। मैंने सोचा था, इस झोंक से भी तुम कुछ दिनों में ठीक हो जाओगे। किन्तु यह रोग बढ़ता ही जा रहा है इससे अच्छा तो तुम्हारा कवि होना ही था। किस कुसमय में तुम्हारे दिमाग में समाज-सुधार की धुन सवार हो गयी थी, समाज-सेवा से ऊपर उठकर तुम अब देश-सेवा के लिए पागल हो उठे हो। मुझे तो भय हो रहा है कि, किसी समय—"

प्रमोद ने गम्भीर मुँह से कहा—"भय किस बात का? मेरा यह रोग भी दो-चार दिनों में ही ठीक हो जायगा। जानते ही तो हो! जिसको तुमने असमय कहा है उसको मैं अपने जीवन का सर्वश्रेष्ठ समय ही मानता हूँ। तुम मुझे आशीर्वाद दो कि, मेरा ऐसा पागलपन दिन पर दिन बढ़ता ही जाय!"

मनीश ने वैसे ही गम्भीर मुँह से उत्तर दिया—"पहले अपनी हालत ठीक करके तब बड़े-बड़े कामों में हाथ लगाया जाता है। नहीं तो अपने हृदय की दीनता से ये सब पक्की इमारतें टूट जाती हैं। इस बात को तुम याद रखना।"

प्रमोद ने इस आलोचना को छोड़ देने की चेष्टा से कहा—"मैं देख रहा हूँ कि, विज्ञान में आनर्स लेकर मैंने अच्छा नहीं किया। इस देश में इस विषय की चर्चा करके मैं कितनी उन्नति कर सकूँगा? मैं अपनी माँ को यहाँ अकेली छोड़कर किसी दूर देश में तो जा न सकूँगा। इसीलिये तुमसे मैं परामर्श चाहता हूँ। तुम तो मेरा मनोभाव पूरा जानते हो। बताओ मैं अब कौन रास्ता पकड़ूँ?"

कुछ ही दिनों में प्रमोद ने अपने जीवन को दूसरे रास्ते से चला दिया। देहात में मलेरिया का कोप बढ़ा हुआ था। गरीब देहाती उसके प्रतिकार का कोई भी रास्ता नहीं पा रहे थे। न तो उनको दवा मिलती थी न तो पथ्य मिलता था, और न तो पुष्टिकर भोजन का ठिकाना था। वे केवल भोग रहे थे, रो रहे थे। धान रोपने का समय था। वर्षा के जल से भींगते रहने के कारण, साथ ही भर पेट अन्न न मिलने के कारण प्रायः सभी किसान मलेरिया से पीड़ित हो रहे थे। मनीश भी कृषक था। पर स्वयं हल जोतने या खेतों में काम करने वाले किसानों में वह नहीं था। खेती का रोजगार था। लोगों से काम लेता था। काम करने वाले बीमार पड़ गये, काम रुक गया। किस तरह से उन लोगों को स्वस्थ-सबल बनाया जाय, इसकी चिन्ता में वह डूब गया? वह गाँव-गाँव में घूमकर वक्तृताएँ देने लगा कि गरीब किसानों की मुफ्त चिकित्सा करना डाक्टरों का धर्म है।

उसकी इन वक्तृताओं का कोई फल नहीं हुआ। यों तो डाक्टरों की कमी ही थी, जो दो एक थे भी, उनकी शान का अन्त ही नहीं था! गरीबों की विपत्ति पर उनको कुछ भी दया नहीं आयी। वे केवल पैसे की चाह में थे। किसी का उपदेश सुनने को तैयार नहीं थे।

सब हालत देखकर और समझकर प्रमोद ने कलकत्ते के मेडिकल कालेज में जाकर नाम लिखा लिया। कौन रास्ता पकड़ना चाहिये, इसपर सोच-विचार करने में समय नष्ट करना उसने उचित नहीं समझा। उसने मन में ठान लिया कि कम से कम अपने छोटे से गाँव के किसानों का दुःख और अभाव दूर करने में सफल होने से उसका जीवन कुछ तो सफल हो सकेगा।

पूजा की छुट्टी में उसकी मुलाकात मनीश से हुई। मनीश ने कहा—"प्रमोद, मुझे यह कहने का साहस नहीं होता कि तुम अभी से आकर घर बैठ रहो। किन्तु तुम्हारे घर की जो हालत मैं देख रहा हूँ, उससे मैं यही कह देना उचित समझता हूँ कि तुमको अपनी माँ के बारे में निश्चिन्त होना उचित नहीं है। वे घर में बिलकुल अकेली पड़ी हुई हैं, इसकी खबर तुमको कुछ है क्या?"

प्रमोद भी इसबार घर में बहुओं की ज्यादती देख रहा था। भाइयों का भी रुख अपनी स्त्रियों के ही पक्ष में देखकर प्रमोद ने एक दिन उन लोगों से कहा—"ऐसा ही व्यवहार करने से मैं माँ को अपने पास ले जाऊँगा। कलकत्ते में एक मकान किराये पर लेकर माँ को रखूँगा।"

दोनों भाई क्रोध से लाल हो उठे, बोले—"तुम यही करो, किन्तु उनके लिए वहाँ जो खर्च होगा, उसका एक पैसा भी हम-

लोग न देंगे। तुम चाहो तो स्वयं रुपया कमाकर मातृभक्ति का परिचय दे सकते हो।"

"क्यों, बाबूजी की सम्पत्ति में क्या माँ का कुछ भी अधिकार नहीं है ?"

"नहीं, तुमको है; तुम अपना तिहाई हिस्सा अलग करके अपनी खुशी से जो चाहो कर सकते हो। इसके पहले नहीं।"

"अच्छी बात है आप लोग ऐसा ही कर दें।"

माँ ने आकर प्रमोद को रोका।

रोते-रोते वे बोलीं—"यह तू क्या कर रहा है प्रमोद ? मेरे लिए तू चिन्ता मतकर। मुझे तो कोई कष्ट नहीं है।"

भाइयों से और भौजाइयों से किसी तरह भी नहीं पटती देखकर माँ ने सचमुच ही प्रमोद को कलकत्ता भेज दिया। जाते समय माँ के पैरों पर माथा रखकर प्रमोद बोला—"क्यों माँ, फुटे हुए शीशों को जोड़ने के लिए तुम इतना प्रयास कर रही हो। मेरे चले जाने पर तुमको अकेली पाकर वे लोग तुम्हारे ही ऊपर टूट पड़ेंगे, माँ। तुमको बहुत कष्ट होगा।"

"कौन कहता है कि मुझे कष्ट होगा ? मेरा मुँह देखकर वे लोग चुप हो जायेंगे। तेरे ही ऊपर वे लोग नाराज हो गये हैं, मैं तो उनकी माँ हूँ।"

प्रमोद चला गया। किन्तु पढ़ाई में मन न लगा सका। मिहिर के पास नम्रता-पूर्वक उसने पत्र लिखकर अनुरोध किया—"अनू को कुछ दिनों के लिए फिर मेरी माँ के पास पहुँचा दीजिये।"

मिहिर ने उसके अनुरोध के अनुसार काम तो किया जरूर,

किन्तु उसने लिखा—"इस प्रकार कितने दिन चलेगा ? मेरी माँ की भी तो वही एकमात्र बहू है, यह बात भी तुम याद रखना।"

मनो के पास भी प्रमोद ने चिट्ठी लिखकर इस सम्बन्ध में अनुरोध किया था। किन्तु मनोरमा ने उत्तर लिखा—"जब कि भाइयों में मनमुटाव है, तब इसके बीच बहन को निरपेक्ष ही रहना चाहिये। जिस माँ की दो बहुएँ और तीन पुत्र हैं, वह भी यदि दुःख पाती है, तो उस माता का दुःख कन्या—जो कि दूसरे के घर की बहू बन चुकी है कैसे दूर कर सकती है।" प्रमोद ओठ दबाकर चुप रहा।

कुछ ही महीने बाद भाइयों की रोषपूर्ण बुलाहट से फिर उसे घर जाना पड़ा। उसकी भविष्यवाणी ही सच निकली। माँ किसी तरह भी घर में लगी आग बुझा नहीं सकीं। लड़के अलग होने के लिए पूरे तैयार हो गये।

अनू ने भी प्रमोद से कहा—"तुम भी माँ की तरह इतना अपमान मत सहो। कोई माँ के साथ एक बात भी नहीं कहता। मुझे यह सहा न जायगा। तुम अलग हो जाओ। माँ इससे कुछ आराम ही पावेगी।"

पिता की मृत्यु के बाद एक वर्ष बीतते न बीतते तीनों भाई अलग हो गये। सुन्दर सुबृहत् अट्टालिका तीन भागों में विभक्त होकर भद्दी हो गयी। दीवाल घेरकर हिस्से अलग कर दिये गये।

९

माँ ने कहा—"अब प्रमोद, मैं अकेली नहीं रह सकती। अब तुम ब्याह कर लो बेटा।"

"क्यों माँ, तुमने अनू को भेज दिया? मैं तो जानता हूँ, तुम अकेली नहीं रह सकती।"

"हाँ रे, एक ही बात तुमको मैं कितनी बार कहूँगी। अनू तो अब पराये घर की हो गयी। अपने लिए उनलोगों का घर मैं कितने दिन सूना रखूँगी? मेरे लिए भी एक अपनी चीज तू ला दे। मेरे लिए ही तो तूने पढ़ना-लिखना भी छोड़ दिया। मुझे बहू लाकर दे दे, तब पढ़ने लिखने में मन लगा।"

"तुम मनो बहन को कुछ दिनों के लिए बुला लो माँ। उसके बाल-बच्चों को पाकर भी तुम कुछ अच्छी तरह रहोगी।"

पागल की तरह बातें मत करो प्रमोद। वे कितने दिन रह सकेंगी। और मनो ने तो कहा है—"तेरा विवाह होने लगेगा तो वे लोग बिदा करेंगे। इधर आने नहीं देंगे।"

"वे लोग आने नहीं देंगे, ऐसी बात नहीं है। भाइयों में फूट है, किसी के प्रति पक्षपात दिखाना पड़ेगा, इसी भय से वह न आवेगी। किन्तु माँ का दावा क्या सबसे अधिक नहीं है?"

माँ चुप हो रहीं। मनीशा ने कहा—"अब बड़ी चाची की बात का तुम क्या उत्तर दे रहे हो। ब्याह करोगे या नहीं?"

"मुझे बचाओ, दो बहुओं के कारण तो माँ की ऐसी दुर्दशा हो रही है। फिर तीसरी के आ जाने से क्या गति होगी! इस-बार देश छोड़कर चला जाना पड़ेगा देखता हूँ।"

क्यों तुम्हारी दोनों बहुएँ ही क्या आदर्श हैं ? उनका ही अनुसरण क्या सभी करेंगी ?''

''जैसा संस्कार है, उसमें रहकर इस देश की स्त्रियाँ और किस ऊँचे आदर्श को देख सकती हैं; बताओ। इन स्त्रियों की अपेक्षा मैं पुरुषों में ही ज्यादा दोष देखता हूँ, यह क्या तुम जानते हो ?''

''तो क्या तुम स्वयं भी यही समझते हो कि भाइयों का रास्ता ही पकड़ोगे ?''

''यह कोई बहुत आश्चर्य नहीं है। यही भय मुझे बहुत लगता है। इसलिए इस जाति से मैं दूर ही रहना चाहता हूँ।''

''अच्छा, यह सब बातों की चतुरता छोड़ो। सचमुच ही बड़ी चाची के लिए तुमको इतना तो करना ही पड़ेगा। नहीं तो वे कैसे दिन वितायेंगी, बताओ ?''

प्रमोद कुछ देर तक निस्तब्ध रह उदास भाव से मित्र क तरफ देखकर बोला—''सब कुछ ही मैं सोचता रहता हूँ, किन्तु अपनी बात भी तो मैं भूल नहीं सकता भाई। जब से ज्ञान हुआ तभी से कितनी ऊँची आशाएँ मैंने मन में धारण की, अब मैं कैसे उनको छोड़ दूँ ?''

''कैसे पागल हो तुम ? ब्याह करने से ही क्या लोगों की ऊँची आशाएँ टूट जाती हैं ? देश के जो लोग महान पुरुष हैं, वे क्या सभी अविवाहित हैं ? और तुमने जो संकल्प किया है, उसमें तो इस विवाह से जरा भी अड़चन नहीं पड़ सकती। तुमको अभी कुछ दिन कलकत्ता रहना ही पड़ेगा, माँ की चिन्ता में पड़े रहने से क्या तुम यह काम कर सकोगे ? माँ को एक सहारा दे दोगे, तो तुम कुछ निश्चिन्त होकर डाक्टरी पढ़ सकोगे।

माँ भी सुखी होंगी। अच्छी तरह तुम मेरी बातों पर विचार करो।"

"मैं विचार करता हूँ मनीश, किन्तु अल्पबुद्धि अशिक्षित, इन लड़कियों को जीवन की संगिनी बनाने में मन में घृणा ही उत्पन्न हो रही है। यह घृणा विवाह के लिए बिलकुल ही अनुकूल नहीं है। इस बात को तुम समझ रखो।"

"कैसी बात कहते हो ? स्त्री-जाति मात्र के प्रति घृणा का भाव रखने से काम कैसे चलेगा ? जिस जाति में तुम्हारी माँ का जन्म हुआ है, अनू का जन्म हुआ है, उसी जाति के सम्बन्ध में तुम यह बात सोच रहे हो कैसे ? भलाई-बुराई सबमें है। और शिक्षा की बात कहते हो—जितनी लड़कियों को हम अपने घर लाते हैं इच्छा करने से ही हम उन्हें अपनी रुचि के अनुसार गढ़ सकते हैं। हमलोग यह तो करते नहीं, हम चाहते तो उनको अपनी रुचि के अनुसार देवियाँ बना देते।"

मनीश तर्क करता रहा पर किसी तरह भी प्रमोद को हरा न सका। बात-वितण्डा बढ़ता ही गया। माँ का मलिन उदास चेहरा प्रमोद को विचलित करने लगा। माँ को बिलकुल अकेली छोड़कर किस तरह वह अन्यत्र जाकर रहेगा। पढ़ने में भी कैसे उसकी तबीयत लगेगी ? और इस तरह घर में बैठे रहने से भी उसके जीवन का कौन उद्देश्य सफल होगा ? अन्त में उसने एक दिन माँ से कहा—"माँ विवाह मैं करूँगा।"

माँ ने मनीश के जरिये पूरा बन्दोबस्त कर डाला। फिर उन्होंने लड़के को कन्या देख आने को कहा। प्रमोद ने हँसकर इसमें अपनी अनिच्छा प्रकट की। माँ ने कहा—"न देखने से भी कोई हर्ज नहीं है। वह लड़की मिनू की देखी हुई है। रूप-गुणमें

लक्ष्मी समान है। मिनू के मुँह से सुनकर मुझे वह पसन्द हो गयी है। बराबर यही ख्याल होता रहता है कि इसी लड़की को पाने से मैं सुखी होऊँगी।"

प्रमोद ने माता की पदधूलि सिर पर धारण करके कहा—"आशीर्वाद दो—ऐसा ही हो।"

मनीश ने कहा—"चलो एक बार देख आओ।"

"पागल हो गये हो क्या! जिनके लिए मैं ब्याह कर रहा हूँ, उनको ही जब कन्या पसन्द है तब मुझे देखने की कोई जरूरत ही नहीं है। कानी, लंगड़ी, गूँगी, लूली नहीं है—इतनी जानकारी हो जानी चाहिये। बाकी बाहर से हम लोग क्या देख पाते हैं।"

अनू आ गयी। मनो भी अपने बाल-बच्चों के साथ आकर माता के पैरों पर गिरी। बहुओं को सास बुला लायीं। बहुओं ने टेढ़ी कुटिल हँसी हँसकर प्रमोद से कहा—"इस बार आदर्श बहू देखकर हमारी आँखें ठंढी होंगी।"

प्रमोद ने भी हँसकर उत्तर दिया—"इसके लिए तुम जरा उद्विग्न मत होना, इस सम्बन्ध में मुझे भी सन्देह नहीं है।"

भौजाइयों ने प्रमोद की उस उक्ति को स्पर्धा ही मान लिया।

बड़े भाइयों ने लौकिकता की रक्षा के लिए भाई के विवाह में योग दिया। कुमुद डिप्टी बनकर अपने कार्यस्थल को गया था! उसने आने में अपनी असमर्थता लिख भेजी। इस दुःख को माँ ने मन ही मन छिपा रखा। प्रमोद की सम्मति के विरुद्ध भी माँ ने कुछ विशेष धूम-धाम से कनिष्ट पुत्र का विवाह किया। बहू देखकर सभी ने एक स्वर से प्रशंसा की। मृण्मयी भी गर्व से फूल उठी। वह भी विवाह देखने के लिए आयी थी। अनू

की खुशी का पता केवल मिहिर को ही लगा था। एक समय एकान्त में पाकर मिहिर ने उसको पकड़ लिया। कहा—"यह कैसा अन्याय है, रिश्तेदारों, अभ्यागतों को धोखा देकर क्या असल चीज को बिलकुल ही अपने कब्जे में रख लिया जाता है। छिः, इससे तो कार्य संचालकों की ही शिकायत होगी।"

अनू ने शंकित चित्त से पति के मुँह की तरफ देखा। उसने सोचा—सचमुच ही शायद माता या भाइयों की कोई त्रुटि पाकर रिश्तेदार, नातेदार नाराज हो गये हैं। घबड़ाहट के साथ उसने पूछा—"क्यों, क्या हो गया है ? कोई कुछ कह रहा है क्या ?"

मिहिर ने गम्भीर मुख से कहा—"कह रहे हैं तो। क्यों न कहेंगे ?"

"कौन क्या कह रहे हैं बताओ न ?"

"कह रहे हैं यही कि, इस बड़े काम के जुनियर मालकिन का यह कैसा स्वभाव है ? सब मिठाइयाँ अपने ही बरतनों में—बाकी लोग क्या यों ही मुँह ताकते रहेंगे। किसी तरह भी यह न हो सकेगा। हिस्सा मिलना चाहिये।"

यह कहकर एकबार चारो तरफ देखकर मिहिर ने अपना हिस्सा वसूल कर लिया। इससे भी आश्वस्त न होकर अनू ने कहा—"सचमुच ही क्या कुछ लोग नाराज हो गये हैं ?"

"क्यों, तुम्हारे सामने ही जो भूखा असन्तुष्ट आदमी मौजूद है; उसकी तो तुम कुछ परवाह ही नहीं करती। समूची हँसी पर अपना ही कब्जा कर लेती हो। इसे क्या कोई सह सकता है ?"

अनू मानो इसबार जरा निश्चिन्त होकर बोली—"तुम हो ? अच्छा, मैं तो समझती थी कि कोई दूसरा—"

"खूब कहती हो, मेरे ऊपर तुम्हारा कुछ ख्याल ही नहीं रहता ?"

"छोड़ो, छोड़ो, जीजी, जीजी ?"

अनू और मिहिर दोनों ही जिस तरफ हो सका, भाग गये।

विवाह का हल्ला-गुल्ला खतम हो जाने पर भी बहू को कई दिनों तक घर रखा गया। मातृहीना और विमाता शासिता बालिका ने इसमें कोई दुःख प्रगट नहीं किया। बल्कि अपने शान्त स्निग्ध मीठे व्यवहार से उसने सबको अपने वश में कर लिया। रूप में गुण में इन्दिरा मानो साक्षात् इन्दिरा है, यह बात सास, ननद और आत्मीय स्वजन एक स्वर से स्वीकार करने लगे। मनोरमा को भौजाइयों का प्यार प्राप्त था। क्योंकि वह बराबर ही बहू और बड़े भाइयों का पक्ष लेकर माँ को भी कड़ी-कड़ी बातें सुना दिया करती थी। किन्तु घर में जब एक नयी बहू आ गयी तब वह अपनी नवीन भाभी की तरफ कुछ झुक गयी। बड़ी भौजाइयों ने अपनी सहेलियों से एक दिन कहा—"हम लोग भी जब नयी आयी थीं, तब ऐसी ही प्रशंसा सबके मुँह से सुनती थीं।" यह सुनकर मनोरमा को भी स्वीकृति देनी पड़ी।

सोहाग रात के दूसरे ही दिन प्रमोद कलकत्ता चला गया। माँ के बारे में वह एक तरह से निश्चिन्त हो गया था। वह और एक दिन की भी क्षति सहने में असमर्थ हो रहा था।

प्रमोद ने अपना यह विचार प्रकट किया था कि बहू को उसके मायके भेजने की जरूरत नहीं है! प्रमोद का यह मत सुनकर माता ने प्रतिवाद किया था। उन्होंने कहा था—"यह क्या उचित होगा बेटा? ऐसा करने से बच्ची को कष्ट देना होगा। दो-एक महीने के लिए भेजूँगी, तब तक मनो मेरे पास रहेगी। उसके बाद भी कभी-कभी दस-पाँच दिनों के लिए उसे उसकी माँ के पास भेज दिया करूँगी, नहीं तो मेरे ऊपर उसके मन में भक्ति-

श्रद्धा कैसे होगी ? तुम मेरे लिए अब चिन्ता मत करना, मैं अच्छी तरह से रह सकूँगी। मैं जैसी बहू चाहती थी, विधाता ने मुझे वैसी ही बहू दे दी है। तुम दो-चार दिन और रहो न बेटा।''

''मुझे तुम यह बात मत कहो माँ। बैठे-बैठे निकम्मा हो जाऊँगा। अपनी बहू को लेकर तुमको जो अच्छा लगे वही करना, मैं जा रहा हूँ।''

१०

प्रमोद के विवाह के बाद एक वर्ष बीत गया है। इने-गिने थोड़े दिनों के लिए प्रमोद माँ को देखने आया था। इसीलिए मनीश के साथ उसका तर्क विधिपूर्वक चल रहा था। मनीश कह रहा था—''तेरा स्वभाव चिरदिन ही क्या एक ही तरह का रहेगा रे ? जो कुछ तू करेगा वही हद से ज्यादा होगा। यही जो तू ने अब मुर्दे चीरना शुरू किया है और जानवरों को काटना शुरू कर दिया है, इसमें तूने तो मन की सारी कोमल वृत्तियों को विसर्जित ही कर दिया है, देखता हूँ। तू क्या जानता नहीं है कि जिसके साथ तूने ब्याह किया है उसके बारे में कितना दायित्व तेरे सिर पर आ गया है। माँ के लिए तू ब्याह करने को राजी हुआ, उसका अर्थ यह नहीं है कि विवाहिता पत्नी के प्रति तेरा कोई दायित्व ही नहीं है। नहीं, तेरा दायित्व पूरा है। यह समझना गलत है कि तूने उससे ब्याह कर लिया तो उसको कृतार्थ

कर दिया। फिर उसके साथ तू किसी तरह का सम्बन्ध ही न रखेगा।''

प्रमोद ने हँसते-हँसते उत्तर दिया—"यह भी क्या कोई बात है ? मैं सम्बन्ध क्यों नहीं रखता ? यही जो मैं घर चला आया हूँ। तुम उसी से जाकर पूछ लो न, जिसके लिए तुम्हारी इतनी वकालत है।''

मनीश झिड़क उठा—''फिर बात बनाने लगे ? यही एक वर्ष में तुम कितनी बार घर आये हो, यह मुझे मालूम है। बड़ी चाचीजी ने उसे अपनी आँखों की पुतली बना दी है। अन्धे की लकुटी वह हो गयी है। और तुम दिन-रात मुर्दे चीरने में व्यस्त रहकर भूत बन गये हो। मैं तेरी गरदन से यह भूत उतार कर ही चैन लूँगा।''

''अब तो मैंने तुम्हारा साथ ही एक तरह से छोड़ दिया है। जो भी हो, एक रास्ते में स्थिर भाव से खड़ा होकर तुम्हारे साथ में मिलूँगा। उसके पहले फिर नहीं, और माँ की जो वह लुकुटी बनी है उसके प्रति मैं कितना कृतज्ञ हूँ—यदि तुम यह बात जानते ?''

''इसलिए क्या मुझे वर्ष में एक बार भी उसकी परछाहीं छूने तक की भी फुरसत नहीं मिलती ? बड़ी चाची कितना दुःख प्रकट कर रही थीं, तू क्या यह जानता है ? कह रहीं थीं कि मातृहीना लड़की की प्रमोद ऐसी उपेक्षा करेगा, यह यदि मैं जानती तो मैं कभी अपने घर उसे नहीं लाती।''

''क्यों तुम लोग बकवाद करके मरते जा रहे हो ? वह तो खूब अच्छी तरह है, मुझसे भेंट हुई थी। मैं तो घर पर नहीं रहता तो भी कमरे की कैसी सजावट उसने कर रखी है। मेज

पर पुस्तकें सजाकर रखी हुई हैं। । लिखती-पढ़ती है। माँ के साथ रहती है। उसे तो कोई कष्ट नहीं है। विशेषतः माँ तो उसकी ही चर्चा बराबर करती रहती हैं। माँ तो उस परायी लड़की को मुझसे भी अधिक प्यार करने लगी हैं यह देखकर भाई मुझे तो डाह हो रहा है।"

"तेरा यह कमरा तो तेरे न रहने पर बन्द ही रहता है मैं देखता हूँ। तेरे लिए ही उन्होंने सजा रखा है मैं समझ गया। वे तो दिन-रात बड़ी चाची के ही पास रहती हैं यही मैं सुन चुका हूँ। फूलों का इतना सुन्दर गुच्छा कहाँ से आ गया; सूघूँ तो। कैसी अच्छी गन्ध है। आः।"

"हाँ सजाया हुआ तो है ही। फूल तो आज के ही ताजे हैं।"

"प्रमोद! तू ऐसा अन्धा क्यों है? छिः ऐसा अन्धा क्यों हो गया है? अब ऐसा मत करना।"

"चलो तो जरा टहल आवें। कमरे में बैठकर तुम्हारी झिड़कियाँ सुनते-सुनते परेशान हो गया हूँ।"

दोनों बाहर चले जा रहे थे कि माँ ने पुकार कहा—"बेटा मन, प्रमोद, जलपान किये बिना बाहर मत जाना।"

जलपान करने को बैठकर मनीश बोला—"बकते-बकते प्यास लग गयी है। सौभाग्य से बड़ी चाची ने पुकारा।"

"क्यों बेटा, अभी थोड़ी ही देर हुई, बहू सुराही में जल भर कर रख गयी है। प्रमोद की आदत है बराबर जल पीते रहने की। इसलिए मैं कमरे में ठंढा जल बराबर रखवा देती हूँ। एक ही दिन के बताने से बहू सीख गयी है। इसी तरह हर काम को केवल एक बार बता देने से वह सीख जाती है। तुमलोग बाहर

जा रहे हो; इसका पता भी मुझे नहीं था । जलखावा तश्तरी में सजाकर वह पहले से ही तैयार होकर इस कमरे से उस कमरे में घुम रही है । मैंने ही कहा कि अभी दोनों बातचीत कर रहे हैं, थोड़ी देर में बुला लाऊँगी ।"

मनीश ने चुपचाप प्रमोद की तरफ देखा । प्रमोद ने झटपट गिलास उठाकर मुँह में लगाकर हिचकी खाकर शोरगुल मचा दिया ।

जल पीकर दोनों मित्र टहलने के लिए बाहर निकल गये । उस दिन घर लौटने में देर हो गयी थी । माँ सो रही थीं । प्रमोद भोजन करके बिछौने पर जाकर लेट गया । उज्ज्वल प्रकाश में कमरा हँस रहा था । शय्या की सजावट में स्नेह का स्पर्श मानो विराज रहा था ! मनीश की बातों पर विचार करते-करते प्रमोद को गहरी नींद आ गयी थी । एकाएक एक बार उसकी नींद टूट गयी । उसने देखा कि बिछौने पर वह अकेला ही है । इधर दो-तीन दिनों से इन्दिरा परछाहीं की भाँति बिछौने के तरफ पड़ी रही है । दो-एक प्रश्न करने पर वह संकोच के साथ उत्तर देती है । आज वह क्यों नहीं आयी ? इस समय क्या इसका पता लगाना चाहिये ? किन्तु रात बहुत हो चुकी है ।

प्रमोद को बड़ी लज्जा मालूम हुई । करवट बदल कर वह सो जाने की चेष्टा करने लगा ।

प्रातःकाल नींद टूटते ही उसने देखा कि कोई काम करके इन्दिरा उसके कमरे से चली जा रही है । प्रमोद ने पुकारा—
"सुनो ।"

इन्दिरा चुपचाप खड़ी हो गयी ।

प्रमोद ने कहा—"इधर आओ ।"

बहुत ही धीरे-धीरे इन्दिरा कुछ अग्रसर हो गयी ।

गले को साफ करके प्रमोद ने कहा—"कल रात को तुम क्यों नहीं आयी ?"

बहुत ही मधुर स्वर से उत्तर मिला—"माँ को कुछ ज्वर आ गया था, इसीलिए ।"

"माँ को ज्वर ? मुझे तुमने बुलाया क्यों नहीं, बताया क्यों नहीं ?"

"माँ ने मना किया था ।"

"ओः, तो भी मुझे बुलाना उचित था ।" यह कहकर प्रमोद उठ खड़ा हुआ ।

इन्दिरा ने फिर कहा—"मुझे भी वे अपने पास न रहने देंगी; इस आशंका से मैंने नहीं बुलाया ।"

प्रमोद माँ का ज्वर देखकर चिन्ता में पड़ गया । दिन पर दिन ज्वर घटता नहीं, बढ़ता ही जा रहा है । यह देखकर प्रमोद ने बहिनों के पास खबर भेज दी, कुमुद के पास भी समाचार भेज दिया । अनू आ गयी, मनो भी आ गयी । दोनों भाई माँ की सेवा-शुश्रूषा करने लगे । बहुएँ भी गृहस्थी के काम धन्धों के बीच-बीच में देख जाया करती थीं । सभी के मन में सन्देह हो गया इस बार मालकिन बचती हैं या नहीं ।

बालिका बधू का विशेष परिचय इस अवसर पर सबको पूरा मिलने लगा । जेठानियों ने सोचा—"यह तो बहुत ही चतुर लड़की है । लोगों से प्रशंसा पाने के लिए इस तरह जी जान से कोशिश कर रही है । इतनी कम उमर की लड़की की यह शक्ति तो असाधारण ही है ।

जेठ लोगों ने सोचा—"यह तो अति हो रहा है। इतनी सेवापरायणा बहू तो इस युग में नहीं दिखाई पड़ती।"

मनोरमा की यही धारणा थी। अनू सोचने लगी—"क्या नयी बहू हम लोगों से भी अधिक माँ को प्यार करती है ? नहीं तो हमलोगों से उसकी तरह सेवा क्यों नहीं हो पाती ?"

किसी-किसी समय सास इन्दिरा के म्लान चेहरे की तरफ देखकर कहती थीं—"हाय बेटी !" सुनते ही मातृहीन बालिका उनकी गोद के पास जाकर लोट-पोट हो जाती थी। रोगिणी भी चेष्टा से उसका माथा स्पर्श करके और हाथ सहलाकर उसे सान्त्वना देती थीं। उसका शोक मानो वही अनुभव कर रही थीं।

एक दिन अपने लड़के लड़कियों को और एक स्नेहार्थिनी बालिका को मातृहीन बनाकर गृहिणी अपनी छोटी सी नयी गृहस्थी को छोड़कर चली गयीं। अनू रोने लगी, मनो रोने लगी। नववधू का रोना सर्वापेक्षा करुण था।

११

बड़े लड़के विनोद ने समारोह के साथ माता का भी श्राद्ध-कार्य सम्पन्न किया। सभी ने कहा—"यह तो यथार्थ पुत्र का काम है।" प्रमोद घर के कोने में मुँह छिपाये पड़ा था। जिस माँ के लिए उसने अपनी अन्तिम इच्छा को भी भंग किया था वही माँ इतनी जल्दी उस बन्धन-मात्र को रखकर चली जायँगी,

इसको वह सपने में भी नहीं जानता था। माँ के अतिरिक्त जगत् का और कोई बड़ा बंधन ही उसके तेईस वर्ष के जीवन पर नहीं पड़ा था। उसी माँ को खोकर वह अब अपने जीवन का सूत्र कहाँ से खींच लेगा। इसे भी मानो वह ठीक नहीं कर पा रहा था। मनीश उसको बार-बार प्रबोध देकर शान्त करने की चेष्टा कर रहा था।

मनोरमा भाई को कुछ उपदेश देकर, भाइयों के साथ सद्‌भाव रखने का अनुरोध करके ससुराल चली गयी। मिहिर ने आकर कहा—"भाई, अब तो अनू को भेज देना पड़ेगा, माँ को अब मैं रोक नहीं सकता।" प्रमोद ने सूखे चेहरे से कहा—"अच्छा।"

प्रमोद जाकर ज्यों ही अनू के पास खड़ा हुआ, त्योंही अनू मुँह ढककर खड़ी हो गयी। डबडबायी हुई आँखों से प्रमोद ने उसके माथे पर हाथ रखकर कहा—"तुम रोओ मत बहन, शीघ्र ही फिर ले आऊँगा। माँ चली गयीं किन्तु मैं तो हूँ।'

"बहू तो बहुत रो रही है भैया। किसी तरह भी उसको मैं रोक नहीं सकती। तुम उसको कुछ समझाना। तुम कलकत्ता अभी मत जाओ—उसके पास रहो!

"अच्छा उसको शीघ्र ही मैं उसके नैहर भेज दूँगा।"

नहीं-नहीं भेज मत देना। उसने जाना नहीं चाहा। माँ चली गयीं। फिर हम लोग भी जा रही हैं, उसे कष्ट हो रहा है जरूर। विशेषतः उसका स्वभाव ही प्रेम से भरा हुआ है।

प्रमोद ने अन्यमनस्कभाव से कहा—"देखूँ, जो अच्छा समझूँगा, वही करूँगा।"

भाई और भौजाई का म्लान मुँह देखकर अनू मिहिर के

पास जाकर रो पड़ी। बोली—"मुझे और कुछ दिन यहाँ रहने दो।"

मिहिर ने अपराधी की तरह संकुचित भाव से कहा—"मैं क्या करूँ? अनू! माँ किसी तरह भी समझ नहीं रही हैं। माँ नहीं हैं, तुम्हारी यहाँ देखभाल करने को कोई नहीं है; यही सोचकर माँ घबड़ा रही हैं। मैं तो आजकल कहकर कई दिन टाल-मटोल करके आया हूँ।" अनू को चुपचाप रोते देखकर मिहिर ने उसे अपनी गोद की तरफ खींचकर कहा—"चलो अनू, रो-रोकर तुमने अपना शरीर कैसा बना डाला है; देखो तो भला। बहू रहेगी! प्रमोद को कष्ट न होगा।"

दूसरे दिन जरा सोच समझकर अनू ने इन्दिरा से कहा—"नलडाँगा जाओगी बहू?"

बहू चुप रही।

अनू ने फिर कहा—"अकेली रहने से शायद तुमको कष्ट हो, इसीलिए कहती हूँ, जाओगी?"

इन्दिरा ने सम्मति सूचक सिर हिलाया।

अनू ने पूछा—"यहाँ भैया के पास तुम न रह सकोगी?"

माथे पर जरा कपड़ा खींचकर इसबार भी इन्दिरा ने सिर हिलाया। अनू ने खुशी से उसको पकड़ कर आलिंगन किया और कहा—"ऐसा ही करो, नहीं तो इस महान शोक के समय छोटे भैया अकेला कहीं रहेंगे, और तुम कहीं रहोगी—यह अच्छा न होगा। दोनों ही यहीं रहो; छोटे भैया की सेवा करने के लिए तुम्हारे सिवा और कौन है? तुम्हारे पास भैया को रखकर मैं कुछ निश्चिन्त होकर जा सकूँगी?"

जाते समय अनू ने कहा—"छोटे भैया, तुम्हारे सिवा बहू का और कोई नहीं, तुम उसे अच्छी तरह देखना।"

आँखों को आँसू से भरकर अनू मिहिर के साथ चली गयी।

छोटी बहन के चले जानेपर प्रमोद की तबीयत दो ही चार दिनों में ऊब गयी। चारो तरफ उसे मानो अनू का ही स्वर सुनाई पड़ता था, अनू की परछाईं मानो साथ-साथ घूमती हुई दिखाई पड़ती थी, अनू की सेवा की स्मृति बराबर बनी रहती थी। और माता की स्मृति साथ ही साथ उसके चित्त को आन्दोलित करती रहती थी। उसके मन में बार-बार यही विचार आता था—"माँ तो अब नहीं हैं, अनू क्या अब बार-बार आवेगी! इसकी चेष्टा करना भी अनुचित होगा, यहाँ अकेला मन ठीक नहीं रहता। इन्दिरा को छोड़कर जाने का उपाय भी नहीं है। मनीश काम का आदमी है, उसको अपने लिए कितनी खींचा-तानी करूँ।"

सोचते-सोचते प्रमोद मनीश के साथ परामर्श करने के विचार से उठ खड़ा हुआ। दरवाजे के पास से मीठे स्वर से उसी समय किसी ने कहा—"पानी पीकर जाइयेगा।"

जलपान करने पर प्रमोद की तौलिया, पान-मसाला की डिबिया और अन्य आवश्यक चीजें यथास्थान पर मिल गयीं। जब भी उसको जिस चीज की जरूरत पड़ती थी, तुरन्त ही उसे ठीक समय पर ठीक स्थान पर मिल जाती थी। प्रमोद की सेवा करने के लिए प्रियतमा पत्नी सदा तैयार रहती थी। ऐसी पतिव्रता स्त्री कम पुरुषों के भाग्य में प्राप्त होती है।

प्रमोद टहलने चला गया। संध्या होने के बाद तुरन्त ही मनीश के कहने से वह घर लौट आया।

कमरे में घुसते ही उसने देखा, इन्दिरा मेज पर उसके लिए कितनी ही जरूरी चीजें रख रही थी। उसको देखते ही इन्दिरा संकुचित होकर एक तरफ हट गयी। प्रमोद पलंग पर बैठकर बोला—"उः, आज बहुत गरम है।"

सुनते ही एक पंखी लेकर इन्दिरा उसकी पीठ की तरफ आ खड़ी हुई। प्रमोद ने हँसकर कहा—"हवा झलने लायक गरम अभी नहीं हुआ है। कुछ बातें करनी हैं सुनो।"

पंखी हाथ में लिये इन्दिरा चुपचाप खड़ी है, देखकर प्रमोद ने कहा—"बैठो।"

कुंटित स्वर में उत्तर आया—"कहिये।"

"न बैठने से मैं न कहूँगा।"

पलंग पर टेककर इन्दिरा प्रमोद की बात सुनने की प्रतीक्षा करने लगी।

प्रमोद उठ पड़ा और पलंग पर जा बैठा। बोला—"अकेली रहने में तुमको बहुत कष्ट हो रहा है न ?" इन्दिरा ने कुछ जवाब नहीं दिया।

प्रमोद बोला—"कष्ट होने की तो बात ही है। इसलिए मैं सोचता हूँ कि तुमको नलडाँगा पहुँचा आऊँ।"

तो भी इन्दिरा ने सम्मति-असम्मति कुछ भी नहीं प्रकट की। चुपचाप प्रतिमा की तरह एक ही दशा में खड़ी रही। प्रमोद ने जरा सोचकर कहा—"तुमको कष्ट हो रहा है, इसलिए मैं तुमको यह बात कह रहा हूँ। तुम मेरे सामने लज्जा मत करो। तुम्हारी जो इच्छा, वही करो। मैं जरा भी असन्तुष्ट न होऊँगा।"

इस बार इन्दिरा ने उत्तर दिया। कहा—"ननद जी मुझे यहीं रहने को कह गयीं हैं।"

"किसने कहा है? अनू ने? उसकी बात छोड़ो। वह मेरी चिन्ता में ही पड़ी रहती है। तुमको तो इस हालत में कष्ट हो रहा है।"

स्पष्ट स्वर में उत्तर मिला—"नहीं।"

"नहीं क्या? कष्ट नहीं हो रहा है?"

और भी ऊँचे स्वर में इन्दिरा ने उत्तर दिया—"कष्ट नहीं होता।"

"लज्जा मत करो। स्पष्ट बात कहो। यह क्या सम्भव है?"

काँपते हुए स्वर से इन्दिरा बोली—"मैं लज्जा नहीं करती।"

"तो तुम यहीं रहोगी?"

"हाँ!"

प्रमोद मानो जरा विचलित होता जा रहा था। उसका गला आप ही मानो भींगता जा रहा था। उसने कहा—"क्यों इन्दिरा? मैं तो अपनी ही चिन्ता में डूबा रहता हूँ। तुम्हारे विषय में एक बार भी नहीं सोचता। और तुम इस प्रकार केवल मेरी ही-सुख सुविधा के प्रयत्न में दिन बिताती रहोगी। इससे तो तुमको अपने आत्मीय-स्वजनों के साथ रहने में आराम मिलेगा। इसीलिए मैं कह रहा था, इन्दिरा।"

इस बार इन्दिरा अपना घूँघट जरा खींचकर खड़ी हो गयी। उसने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। प्रमोद बड़ी देर तक प्रतीक्षा करता रहा। अन्त में बोला—"तो क्या तुम जाओगी?"

"आप जाने को कहेंगे, तो जाऊँगी।"

"यह बात तो मैंने नहीं कही। मैं क्या तुमको यहाँ से

निकाल रहा हूँ ! मैं तुम्हारी बात एक बार भी नहीं सोचता। दिन-रात अपनी ही चिन्ता में डूबा रहता हूँ, इसके लिए तुम क्या मेरे ऊपर नाराज नहीं होती ?"

घूँघट के अन्दर इन्दिरा पसीने से लथपथ होती जा रही थी। उसका माथा बिलकुल ही झुकता जा रहा है यह देखकर प्रमोद निकट जाकर उसका एक हाथ पकड़कर अपने हाथ पर रखकर बोला—"क्या ही कोमल सुन्दर यह हाथ है ?"

तो भी इन्दिरा चुप रही।

प्रमोद ने हँसकर कहा—"इतना ठंढा है ! पसीना हो गया है क्या ? तुम क्यों मुझसे इतनी लज्जा करती हो ! अच्छा जब तक मैं यहाँ हूँ, तब तक मैं तुमको जाने न दूँगा। जिस दिन मैं कलकत्ता जाऊँगा, उस दिन तुमको भी वहाँ पहुँचा आऊँगा !"

धीरे-धीरे मुँह ऊपर उठाकर उसने ज्योंही पति की तरफ देखा, त्योंही दोनों की आँखें परस्पर लड़ गयीं। उसके स्वच्छ सुन्दर सजल नेत्रों में प्रमोद ने मानो उसके हृदय का चित्र भी देख लिया। इन्दिरा ने आँखें नीचे झुका लीं। प्रमोद उसका हाथ दबाकर बोला—"क्या कहना चाहती थी, कहो ?"

इन्दिरा ने मृदु स्वर से कहा—"कब ?"

"क्या कब ? कलकत्ता जाने की बात पूछ रही हो ?"

"हाँ !"

"उसमें अभी देर है। किन्तु देर सुनकर खुश मत हो जाओ।"

प्रमोद के मजाक का मर्म समझकर इन्दिरा लज्जित होकर घरेलू काम-धंधे में चली गयी, सामने आने वाले विच्छेद की

सम्भावना को लेकर ही यही पहली बार दोनों में स्नेह-परिचय आरम्भ हुआ ।

कुछ ही दिनों में कलकत्ता जाने की तैयारी करके प्रमोद ने इन्दिरा को बताया—"अब मुझे जाना पड़ेगा !"

इन्दिरा उसका सब समान ठीक-ठाक करने लगी ।

प्रमोद का मन उदास होने लगा । किस कारण उसका मन खराब होता जा रहा था, इसका पता उसे नहीं चल रहा था ।

शाम को मनीश के साथ प्रमोद टहलने गया । थोड़ी देर में घर लौटने पर वह अपने सोने के कमरे में चुपचाप चला गया । अचानक इन्दिरा को जरा सा भय दिखाने अथवा आदर करने की इच्छा ही उसके हृदय में सहसा जाग उठी थी ।

बत्ती के पास खड़ी होकर इन्दिरा कुछ कर रही थी । काम में व्यस्त रहने से आज इन्दिरा के बाल भी बाँधे नहीं गये थे । शुभ्र आलोक सागर में मानो वह एक आलोक की प्रतिमा सी थी । काफी सतर्कता से आने पर भी इन्दिरा को उसके आने का पता चल गया और साथ ही साथ उसके हाथ से खाता भी गिर गया । प्रमोद ने उस तरफ लक्ष्य न करके उसके सिर पर हाथ रखकर कहा—"यह क्या ? तुम्हारा मुँह इतना सूख गया है, बाल बाँध नहीं गये हैं—तबीयत तो खराब नहीं है न ?"

खाते को उठाकर आँचल में छिपाते-छिपाते इन्दिरा ने सिर हिलाया, कहा—"नहीं ।"

"तुम क्या पढ़ रही थी इन्दु ?"

"वह एक कापी है !"

"कैसी ? देखूँ तो ?"

इन्दिरा ने भाग जाने की ज्योंही कोशिश की, त्योंही प्रमोद ने उसे पकड़ लिया—"यह नहीं होगा देखूँ, तुम क्या पढ़ रही थी ?"

खींचातानी होने पर इन्दिरा द्रुतपद से भाग गयी। प्रमोद ने देखा, उसकी ही बहुत दिनों की बनायी हुई कविताओं की वह कापी है। इसको इन्दिरा ने कहाँ से ढूँढ़ निकाला है ? आश्चर्य की बात है। मुस्कुराकर प्रमोद उसके दो चार पन्ने उलटने लगा। जो कुछ उसकी दृष्टि में पड़ी, सब ही आज मानो बहुत अच्छा मालूम हो रहा था। संसार में सब कुछ ही आज इतना मीठा क्यों मालूम होने लगा है इसे किन्तु उसने समझने की चेष्टा नहीं की।

रात को जब इन्दिरा उसके पास आयी, तब प्रमोद एक लम्बी साँस लेकर बोल उठा—"कल नलडाङ्गा जाओगी ?"

इन्दिरा जरा चुप रहकर मृदु भग्न कंठ से बोली—"तुम भी तो कलकत्ता जा रहे हो ?"

"हाँ !"

"वही बात कह रही हूँ ! कितने दिन अब भेंट न होगी !"

"चिट्ठी लिखोगी तो इन्दु ?"

"मैं तो अच्छी तरह लिखना नहीं जानती !"

"जैसा जानती हो, वैसा ही लिखना। लिखोगी तो ?"

इन्दिरा ने सिर हिलाया। एक क्षण बाद मानो रूँधे हुए गले से बोली—"यहाँ फिर कब आओगे ?"

"यहाँ अब किसके पास आऊँगा इन्दु ! माँ क्या अब है ?"

दोनों की ही आँखों से आँसू की धारा बहने लगी। थोड़ी देर बाद जरा सम्हलकर प्रमोद ने इन्दिरा को सान्त्वना दी, बोला—"रोने से क्या फल मिलेगा! चुप रहो। तीन वर्ष के बाद फिर तुमको यहाँ मैं लाऊँगा। इसके बीच जब अवसर मिलेगा तुम्हारे साथ मुलाकात कर आऊँगा। ये इने-गिने वर्ष देखते-देखते बीत जायँगे। तुम चिन्ता मतकरो।"

प्रमोद ने मानो निश्चिन्त भाव से ही ये बातें कह डालीं। किन्तु इन्दिरा की साँस मानो रह-रहकर रुकती चली जा रही थी। तीन वर्ष! दीर्घ तीन वर्ष! इतने दिन वह किस तरह बितावेगी!

१२

कुछ ही महीनों में प्रमोद ने दृढ़ निश्चय कर लिया कि विलायत जाकर डाक्टरी विद्या में विशेष योग्यता प्राप्त करके ही स्वदेश लौटूँगा। बाधा पड़ने के भय से मनीश से भी उसने इस विषय की चर्चा नहीं की। चुपके-चुपके खर्च आदि की उपयुक्त व्यवस्था करके इन्दिरा से भेंट करने के लिए ससुराल को रवाना हो गया। वह बीच-बीच में इन्दिरा को पत्र लिखा करता था। इन्दिरा भी पत्रोत्तर में उसको अपनी प्रतिश्रुति की याद दिला देती थी। प्रमोद बचन दे चुका था कि बीच में वह उसके साथ अवश्य ही मुलाकात करेगा।

पति के आने के समाचार से इन्दिरा आनन्द से अधीर हो उठी थी। पति का यह आगमन किस कार्य के निमित्त है, इसको उस बेचारी ने सपने में भी नहीं सोचा था।

प्रमोद ससुराल आकर जब इन्दिरा से मिला तो उसका मुँह अपने दोनों हाथों से पकड़ कर बोला—"तुम अच्छी तरह हो तो इन्दु ?"

इस प्रश्न से अत्यन्त लज्जित होकर अपने अतिरिक्त आनन्द के भार से घबड़ाकर इन्दिरा ने अपना मुँह हटाकर ढक लेने की चेष्टा करते-करते कहा—"हूँ !"

"मेरे लिए तुम्हारा मन क्या जरा भी घबड़ाता नहीं था ?"

प्रमोद के इस अनुचित आक्रमण से इन्दिरा और भी लज्जित हो गयी और घबड़ा उठी। क्या करना चाहिये—कुछ भी समझ नहीं पा रही थी। उसके लाल सुन्दर मुख को अपने मुँह के पास उठाकर प्रमोद बार-बार वही प्रश्न कर रहा था—"तुम्हारा मन क्या घबड़ाता नहीं था इन्दु ?"

लज्जित चेहरे से इन्दिरा बोल उठी—"जरूर ही घबड़ा रहा था !"

"घबड़ा रहा था ?" प्रमोद क्षण भर बाद एकाएक बोल उठा—"अच्छा, यदि अब बहुत दिन तुम मुझे देख न सको तो क्या तुम्हारा मन घबड़ाता रहेगा इन्दिरा ?"

क्षण भर में इन्दिरा के चेहरे का सारा रक्त न मालूम कहाँ उड़ गया। उस पर सफेदी छा गयी। शंकित मन से पति के मुँह के तरफ देखती हुई इन्दिरा ने पूछा—"यह बात तुम क्यों कह रहे हो ?"

"बताऊँगा अभी इस बात को, बताओ न; मन घबड़ाता रहेगा क्या ?"

"हाँ" कहते-कहते इन्दिरा बालिका की तरह रो उठी—लज्जा करने लायक तब उसके मन में कुछ भी नहीं रहा।

प्रमोद व्यस्त होकर उसकी आँखें पोंछते-पोंछते बोला—"यह क्या ? तुम रो रही हो क्यों ? रोने लायक तो मैंने कोई बात नहीं कही !"

इन्दिरा ने अपने को यथाशक्ति सम्भाल कर कहा—"तुम कहाँ जाओगे ?"

यदि ऐसा करोगी तो मैं न कहूँगा !"

"अब न करूँगी ! तुम कहो।"

निर्दय व्याध की तरह बाण से आहत पक्षी के शरीर पर हाथ सहलाते-सहलाते प्रमोद बोला—"और पन्द्रह दिनों के बाद मैंने विलायत जाने का निश्चय कर लिया है ! वहाँ से बहुत बड़ा डाक्टर बनकर आऊँगा और देश में अपने गाँव में रहकर गरीब जनता के उपकार में उस विद्या का उपयोग करूँगा। इन्दिरा यही है मेरे जीवन का महान व्रत। इसके लिए तुम इतना कातर मत हो जाना। मेरे काम में तुमको उत्साह देना चाहिये !"

इन्दिरा स्तम्भित भाव से टकटकी बाँधे पति की तरफ देखती रही। अन्त में क्षीण कंठ से उसने पूछा—"तुम विलायत जाओगे ?"

"हाँ !"

"वहाँ जाने से तो जात चली जाती है !"

"ये सब झूठी बातें हैं। और दूसरों के लिए मेरी जात

चली जाय या रहे, तुम्हारे लिए क्या किसी भी हालत में मेरी जात जा सकती है? बताओ?"

"नहीं!"

"तो फिर? दूसरे जो चाहे कहें, हम लोगों का इसमें नुकसान क्या है?"

इन्दिरा मानो कुछ आश्वासन पाकर बोली—"कितने महीने तुम वहाँ रहोगे?"

प्रमोद ने इस बार उदास होकर कहा—"महीने नहीं; इन्दु कम से कम दो वर्ष तो अवश्य लग जायँगे! इसीलिए सोच रहा था, शायद तुम्हारा मन घबड़ा उठेगा।"

इस बार इन्दिरा प्रमोद की गोद पर पछाड़ खाकर गिर पड़ी। प्रमोद उसको तरह-तरह की बातों से सान्त्वना देने लगा। उसकी आँखों का आँसू पोंछते-पोंछते प्रमोद की अपनी दोनों आँखें भी भींग जाने लगीं।

बड़ी चेष्टा से भविष्य के अनेक सुखों का चित्र अंकित करके प्रमोद उसको कुछ स्वस्थ बना सका। इन्दिरा ने तब जरा हँसकर कहा—"किन्तु एक बात है!"

"क्या?"

इन्दिरा कुछ भी बोल न सकी। केवल जरा-जरा हँसती रही। प्रमोद भी छोड़ता नहीं था। अन्त में इन्दिरा ने पति की गोद में मुँह छिपाकर अस्फुट स्वर में कहा—"वहाँ जाने पर क्या मेम से ब्याह करना पड़ता है?"

प्रमोद ठठाकर हँस पड़ा। अन्त में आदर करके बोला—"यही तो मेरी मेम घर में ही मौजूद है।"

"हूँ—यही बात है क्या वे तो बहुत सुन्दरी होती हैं—"

"तुमसे अधिक सुन्दरी वे हो सकती हैं ? और हों भी तो क्या ? मेरे लिए तो तुम हो ही इन्दिरा। तुमको डरने की बात नहीं है। मुझे ही डर है। पीछे जात जाने के भय से, आत्मीय स्वजन छोड़ देंगे; इसकी शंका से तुम मुझे छोड़ दोगी। सुनता हूँ, ऐसी अनेक घटनाएँ हो चुकी हैं।

इन्दिरा अविश्वास की हँसी हँस पड़ी। बोली—"यह भी क्या सम्भव है।"

"जो हो, एक बात सुनो। मेरी सम्पत्ति जो कुछ है, सब भैया लोगों के हाथ बेचकर मैं तुम्हारे नाम बैंक में रुपये जमा कर देता हूँ। अपनी जरूरत के अन्दाज में अपने साथ रुपया ले जाऊँगा। और यह बक्स तुम अपने पास रख लो। इस समय तुमको जो जरूरत है। मैं यह इसलिए देकर जा रहा हूँ कि तुम्हारे पिता के मन में यह ध्यान पैदा हो कि मैं तुमको भारस्वरूप यहाँ छोड़कर जा रहा हूँ।"

इन्दिरा ने क्षीण स्वर से कहा—"मेरे पास क्यों रखोगे ? बाबूजी को ही दे जाओ—उनको ही बता जाओ। और मेरे नाम से क्यों यह सब करते हो—अपने ही नाम से सब कुछ रख जाओ। तुम शीघ्र आकर फिर ले लेना।"

मेरे नाम से रखना जो बात है, तुम्हारे नाम से रखना भी वही बात है। मैं तुम्हारे बाबूजी को या भाई-बहनों में से किसी को भी अब कुछ न कहूँगा—पीछे किसी तरह की मुझे बाधा दी जायगी, यह आशंका मुझे है। जब मैं चला जाऊँगा, सभी जान जायँगे। मनीश मेरा घनिष्ठ मित्र है, पर उसको भी मैंने नहीं बताया है। तुम अभी किसी को मत बताना।"

भद्दे आर्त्तस्वर से इन्दिरा फिर रोने लगी—"क्या सचमुच ही जाओगे ?"

प्रमोद दुःखित भाव से सान्त्वना देने लगा। उसने कहा—"मेरी उन्नति से क्या तुमको इतना कातर होना उचित है इन्दिरा ? मैंने अपने जीवन की ऊँची आशायें बना रखी हैं। मैं जगत् में जनता के हित के लिए अपने जीवन को लगा देना चाहता हूँ। परोपकार ही मेरे जीवन का लक्ष्य है। बात की बात में दो साल बीत जायँगे, तुम डरती हो क्यों ? इस तरह करने का मतलब मुझे निरुत्साहित करना है।" इसी तरह और भी कई तरह से उसने समझाया। बहुत समझाने-बुझाने पर इन्दिरा को कुछ सन्तोष हुआ। उसने कहा—"तो तुम दो-चार दिन रहकर जाओगे, बताओ।"

"यदि मेरे दो-चार दिन रुक जाने से तुमको सन्तोष हो, तो मैं रह जाऊँगा।"

प्रमोद आ गया है। यह सुनकर मृणमयी उसके साथ भेंट करने के लिए आयी। बड़ी चाचीजी का चर्चा उठाकर वह बहुत रोती रही। गृहस्थी में सबके अलग हो जाने पर उसने बहुत दुःख अनुभव किया। अनू का समाचार बार-बार पूछने लगी।

प्रमोद समझ गया, मिनू अभी तक परायी नहीं हुई है। मृणमयी कुछ मजाक के ही रूप से इन्दिरा के सम्बन्ध में प्रमोद को कह रही थी। मज़ाक का उसका रिश्ता ही था। उसने कहा—"तुम बहू को अपने साथ क्यों नहीं ले जाते ? तुम शीघ्र ही चले जाओगे, इस कारण इस बेचारी का मुँह सूखता चला जा रहा है प्रमोद भैया। छिः तुम कैसे दुष्ट हो। क्या लिखना-पढ़ना ही सब कुछ है।"

हँसते-हँसते मृण्मयी यह बात कह रही थी। किन्तु सुनते-सुनते प्रमोद का मुख भी मलिन होता जा रहा था। बालिका की वेदना वह मानो तीव्र भाव से ही अपने हृदय में अनुभव कर रहा था।

प्रमोद सहसा बोल उठा—"मिनू, मैं देखता हूँ कि अब तुमको ही अपनी बहू का अभिभावक होकर रहना पड़ेगा।"

मृण्मयी घबड़ा उठी, बोली "यह कैसी बात कहते हो? क्यों? तुम क्या इस बार शीघ्र न आओगे? इस तरह की बात क्यों कहते हो?"

प्रमोद सावधान हो गया। बोला—"शीघ्र कैसे कहूँ। इसी बार तो देखो न कितने दिनों के बाद मैं आया हूँ। इस बार और भी देर होगी। तुम लोगों के ही यहाँ अब यह कुछ दिन रहेगी।"

उस रात को प्रमोद इन्दिरा को बहुत समझाता रहा। परन्तु किसी तरह भी वह शान्त नहीं हो रही थी। इन्दिरा को मालूम हो रहा था मानो, एक-एक करके उसके सभी चले जा रहे हैं। इस बार शायद पति भी चले जायँगे। फिर क्या वह उनको देख सकेगी? प्रमोद उसको जरा उत्तेजित करने के लिए कहा—"देखो, मुझे तुम भूल मत जाना।"

इन्दिरा क्षीण हँसी हँस पड़ी।

प्रमोद बोला—"तुम हँस पड़ी, इसका क्या मतलब? शायद तुम यह कहना चाहती हो कि भूल भी सकती हूँ। यही न?"

इसबार दुःख की म्लान हँसी के साथ इन्दिरा बोली—तुम ही मुझे भूल जाओगे, देखो?"

इन्दिरा के कंठस्वर से व्यथा पाकर प्रमोद बोला—"यह क्या तुम्हारी आन्तरिक बात है इन्दिरा ?"

इन्दिरा और भी रो उठी। उसने पति की गोद में मुँह छिपा लिया। प्रमोद ने उसका मुँह ऊपर उठा लिया। फिर अपने सामने खींचकर स्नेहपूर्ण स्वर से बोला—"बताओ, इसमें क्या तुमको विश्वास होता है ? मेरी शपथ है, तुम सच-सच बताओ। तुमको कैसा मालूम हो रहा है ?"

इन्दिरा पति की तरफ स्थिर दृष्टि से देखती हुई बोली—"विश्वास की बात मत कहो। यही विश्वास हो जायगा; तो मैं किस आशा से जीवन धारण करूँगी। विश्वास नहीं होता। एक तरह का भय मालूम हो रहा है।"

"किस बात का भय तुमको है इन्दु ?"

"मुझे केवल यही मालूम हो रहा है कि शायद अब मैं नहीं पाऊँगी।" यह कहते-कहते इन्दु पुनः पति की गोद में लुढ़क पड़ी। उसने पति की गोद में फिर अपना मुँह छिपा लिया और सिसक-सिसककर रोने लगी।

प्रमोद ने मीठे स्वर से पूछा—"क्या नहीं पाओगी इन्दिरा ?"

"क्या बताऊँ ?" कहकर इन्दिरा सिसकने लगी।

"बताओ न क्या नहीं पाओगी ?"

इन्दिरा फूट-फूटकर रोने लगी।

प्रमोद ने फिर—"बताओ इन्दिरा क्या नहीं पाओगी ?"

इन्दिरा ने भर्राये हुई आवाज में कहा—

"तुमको ?"

प्रमोद चतुर्दश वर्षीया बालिका के प्रेम के सामने झुक गया। वह उत्तेजित हो उठा। अपने भविष्य के बारे में कुछ भी चिन्ता

न करके बचन-बद्ध होने के लिए वह उत्तेजित हो उठा। उसने कहा—"तुमने यह कैसी शंका प्रकट की इन्दिरा? यदि मुझे भगवान् न बुला लें तो मुझे रोकने वाला इस जगत् में कोई नहीं है। देखो मैं सच कहता हूँ, जितनी बाधाएँ ठेलनी पड़ेंगी उन सभी को मैं ठेलकर फिर तुम्हारे पास आऊँगा और आकर इसी तरह अपनी गोद में चिपका रखूँगा। तुम मेरी प्रतीक्षा में रहो। देखना, मेरी यह बात झूठी न होने पावे!"

इन्दिरा आँखों का आँसू पोंछकर उठ बैठी, बोली—"मेरा जो भी होगा; भगवान् तुमको अवश्य ही सकुशल मेरे पास लावेंगे।"

"तो मुझे भी तुम फिर पाओगी। हम लोगों को किस बात का भय है?"

प्रमोद के चले जाने के बाद इन्दिरा अत्यन्त उद्विग्न होकर समय बिताने लगी। बीच-बीच में वह मृणमयी के पास जाती थी। मृणमयी उसका मलिन मुख देखकर जब मजाक करती तो, वह उदास होकर हँस देती थी। उस दिन भी वह मृणमयी के पास थी। उसी समय उसकी एक सौतेली बहन ने आकर कहा—"जीजी, चलो शीघ्र घर चलो!"

शंकित चेहरे से इन्दिरा ने कहा—"क्यों रे?"

"पाहुन जी की कैसी खबर आयी है? चलो तुम!"

मृणमयी चौंक पड़ी। उसने पूछा—"पाहुन जी की खबर? क्या है रे? प्रमोद भैया अच्छी तरह हैं तो?"

"यह मैं नहीं जानती, चलो जीजी, शीघ्र ही बाबूजी बुला रहे हैं!"

इन्दिरा जड़वत् अचल सी हो उठी। मृणमयी उसका हाथ

पकड़कर धीरे-धीरे उसे अपने साथ ले गयी और उसके घर पहुँचने पर उसने देखा कि, वहाँ अद्भुत् काण्ड मच गया है। इन्दिरा की माता सिंहिनी की तरह गरज रही हैं—पिता माथे पर हाथ रखकर बैठे हुए हैं। मुहल्ले भर के बहुत से लोग जमा हो गये हैं। आश्चर्य भरे भाव से कह रहे हैं—"क्या बात है? क्या बात है?"

विमाता कह रही हैं—"मेरे पेट से पैदा हुए भी तो पाँच बच्चे हैं। मैं क्या इस लड़की के लिए समाज से अलग रहूँगी। इस लिए इस लड़की को हटा दो, इसके जो जहाँ हो, उसके पास चली जाय!"

पिता ने लम्बी साँस लेकर कहा—"यदि उसके साथ सम्बन्ध रखा जायगा तो जाति से अलग ही रहना पड़ेगा! इसमें सन्देह नहीं कि ऐसे नालायक के साथ लड़की का ब्याह करके मैंने बड़ी भारी गलती की।"

विमाता गरज उठीं—उससे मैं सम्बन्ध न रखूँगी। अभी से मुझे सम्बन्ध की जरूरत नहीं है। इस लड़की को उसकी ससुराल उसके ससुर के पास भेज दो। जिनके घर की है वे ही लोग सँभाले और समझें!"

मृण्मयी ने उनको पकड़कर प्रायः झकझोर कर कहा—"क्या हो गया है पहले यही बताओ न? क्या बात है!"

विमाता ने हाथ मुँह हिलाकर कहा—"बेटी तुम्हारे ही मायके के धनुर्धर लड़के की बात कह रही हूँ! तुमने ही तो बड़ी प्रशंसा करके यह विवाह ठीक किया था। अब उसकी कीर्ति सुनो। लड़का विलायत चला गया है। और वहाँ से अपने

ससुर को उसने चिट्ठी लिखी है कि, आप अपनी लड़की को और दो वर्ष अपने यहाँ रखिये।'

"क्यों भैया! अपने भाइयों के पास रखकर जाने से ही तो काम बन जाता। हम गरीब हैं किन्तु हम जाति नष्ट नहीं करना चाहते। जाति-रक्षा करना हमारा धर्म है। हम लोग आचारभ्रष्ट नहीं हैं। इस लड़की को मैं अब अपने यहाँ रख नहीं सकती!"

पिता कहने लगे—"ओः चुप रहो न! उसने क्या व्यवस्था करने को लिखा है पहले समझ तो लूँ। पहले ही इतना बकवाद क्यों कर रही हो! धीरज रखो!"

मृण्मयी ने तब रोष के साथ कहा—"आप लोग अभी से क्यों घबड़ा रहे हैं! प्रमोद भैया विलायत से लौटेंगे तब उनकी जात जायगी। इसकी ननदें हैं, इसके जेठ लोग हैं, जेठानियाँ हैं! इसका अपना मकान है! ठहरो! मैं इसको वहाँ पहुँचाने की व्यवस्था कर देती हूँ। अभी मैं खबर भेज रही हूँ।"

"यही करो बेटी, मेम साहब बनाने से हम लोगों का काम न चलेगा!"

इन्दिरा भय और लज्जा से मानो जड़वत् हो गयी। मृण्मयी ने हाथ पैर पकड़कर उसको शान्त किया। क्योंकि प्रमोद ने जो इच्छा प्रकट की है, उसके अनुसार यहीं रहना उसका कर्त्तव्य है। किन्तु सौतेली माँ और पड़ोसियों की व्यंग्योक्ति से उसका कोमल सरल हृदय वेदना से भर उठा। वह समझ गयी कि आत्मीय स्वजनों की दृष्टि में इस घर के लोगों का तुच्छ त्याज्य बनकर रहना पड़ेगा।

इन्दिरा की घबड़ाहट का ठिकाना नहीं रहा। लोग प्रमोद के नाम पर गालियों की बौछार करने लगे। सुनते-सुनते इन्दिरा बहुत ही ऊब गयी। वह सोचने लगी, बिना समझे बूझे पति ने ऐसा काम क्यों किया? इस काम से भविष्य में उनको न मालूम कितना कष्ट उठाना पड़ेगा।

१३

धीरे-धीरे इन्दिरा के दिन बीतने लगे। अनू की दो चिट्ठियाँ उसे मिलीं। उनमें उसने लिखा था—"छोटे भैया आत्मीयस्वजनों में से किसी को भी कोई खबर न देकर विलायत को रवाना हो गये हैं। मनोरमा और दोनों भाई भी उसको गालियाँ दे रहे हैं।"

चिट्ठियों से यह भी मालूम हुआ कि अनू भी प्रमोद के लिए अत्यन्त चिन्तित है। उसको इस बात का दुःख है कि उसके छोटे भैया कैसे इतने निर्मोही हो गये। यह सब सुनकर इन्दिरा दिन पर दिन सूखने लगी। क्या होगा? क्या उसके पति को सभी लोग छोड़ देंगे? अनू ने इन्दिरा को अपने पास ले जाने की इच्छा की। किन्तु मृणमयी ने परामर्श दिया—''नहीं! प्रमोद भैया तुमको जिस तरह जहाँ रहने को कह गये हैं, तुमको वहाँ रहना चाहिये। किन्तु इन्दिरा को एक बात से बहुत ही आश्चर्य हो रहा था। प्रमोद की चिट्ठियाँ सभी के पास आयी हैं, उसके पास क्यों नहीं आयीं?

इन्दिरा ने माता-पिता को बता दिया था कि उसके पति प्रमोद उसके नाम बहुत रुपये जमा कर गये हैं और उसके पास भी रख गये हैं। इसके फलस्वरूप सरल बालिका कैसे षड्यंत्र जाल में पड़ गयी है, इसको वह कैसे समझेगी। माता-पिता धीरे-धीरे उसे अपनी तरफ, अपने विचारों में लाकर, प्रमोद से अलग करने की निरन्तर चेष्टा कर रहे थे। प्रमोद उसके नाम जो चिट्ठियाँ भेजता था, उनको वे लोग नष्ट करते जा रहे थे। विलायत जाने पर क्या कोई मेम से विवाह किये बिना लौट सकता है? और इसके बहुत से उदाहरण हैं कि पति के विधर्मी हो जाने पर कितनी ही स्त्रियों में उन्हें निःसंकोच छोड़ दिया है। क्योंकि धर्म की रक्षा, जाति की रक्षा, वंश की मर्यादा-रक्षा सबसे बढ़कर है। जाति ही न रहेगी, वंशकी मर्यादा ही नष्ट हो जायगी तो फिर पति को लेकर क्या होगा? जो पति जाति-च्युत हो जाय, जो पति धर्म छोड़कर विधर्मी बन जाय उसका छूना भी पाप है। इसी तरह की शिक्षा इन्दिरा को बराबर मिलने लगी।

सुनते-सुनते इन्दिरा का चित्त अत्यन्त विचलित हो उठा। अश्रु पूर्ण नेत्रों से उसने मृणमयी को एक दिन ये बातें सुना दीं। मृणमयी ने हँसकर कहा—"जो लोग चाहें कहते रहें न! तुम चुपचाप सुनती रहो। दिन बीत जाने दो। प्रमोद के वापस आ जाने पर समय के अनुसार उचित व्यवस्था हो जायगी। घबड़ाने से क्या होगा?"

मृणमयी ही एक मात्र उसकी परामर्शदात्री थी। वही समझाती-बुझाती थी। वही सान्त्वना देती थी। किन्तु मृणमयी को अपने पति के यहाँ उनकी नौकरी की जगह पर चला जाना

पड़ा। उसके चले जाने से बालिका अपने को बिलकुल ही आश्रय हीन समझने लगी।

एक वर्ष बीत गया। प्रमोद की कोई खबर उसे मिली नहीं। अनू भी उसकी कोई खबर नहीं लेती थी। वह सोचने लगी किन्तु पति को पढ़ाई में व्यस्त रहने से समय न मिलता होगा, किन्तु अनू ने भी क्या उसे छोड़ दिया।

इसी प्रकार अति कष्ट से दिन बीत रहे थे, कि एकाएक इन्दिरा के पिता का देहान्त हो गया। शोकाकुल बालिका दुगुनी विपत्ति में पड़ गयी। उसकी सौतेली माँ ने कहा—"अब तो यहाँ मेरा रहना व्यर्थ है। मैं अपने मायके जाकर रहूँगी।"

विमाता ने इन्दिरा को भी अपने साथ ले जाने की इच्छा प्रकट की। इन्दिरा किंकर्तव्यविमूढ़ हो गयी। वह समझ नहीं पा रही थी कि क्या करना चाहिये। इसी उधेड़बुन में वह पड़ी हुई थी कि एक दिन उसको अपनी मझली जेठानी अर्थात् कुमुद की स्त्री की चिट्ठी मिली। इन्दिरा के लिए सहानुभूति दिखाकर उसने लिखा था—"मैं मौजूद ही हूँ, तो तुमको अपने नैहर में रहने की कोई जरूरत नहीं है। तुम यहाँ आकर मेरे साथ रहो। मेरी तबीयत इन दिनों खराब रहती है। तुम्हारे साथ रहने से मुझे आराम मिलेगा। मेरे बाल-बच्चे तुम्हारे बाल-बच्चे ही के समान हैं। उनके लालन-पालन में व्यस्त रहने से तुम्हारा समय भी सुख से बीतता रहेगा।"

ससुराल के स्वजनों की बुलाहट से इन्दिरा को खुशी हुई, पिता के मर जाने के बाद सौतेली माँ के साथ रहने में उसे बहुत कष्ट हो रहा था। इसके सिवा दो ही चार दिनों के पति-मिलन की सुख-स्मृति उसके मन में जाग्रत हो उठी। उसने सोचा यदि

पति के उस कमरे में दिन में एक बार भी जा सकूँगी तो मेरा जीवन कितना सुखी होगा ! इसके सिवा उसको यह भी याद पड़ा कि उसी गाँव में मनीश भी है। उससे पति का समाचार पाने में भी सहूलियत होगी।

इन्दिरा प्रसन्नता के साथ वहाँ चली गयी। किन्तु पहुँचते ही समझ गयी कि यह उसका भ्रम था। जिस घर के लिए वह लालायित थी, उसमें वह एक दिन भी, टिक न सकी। कुमुद की स्त्री ने उसको वहाँ रहने ही नहीं दिया। जिस घर के लिये तृषित होकर उसने जेठानी के प्रस्ताव पर तुरन्त सम्मति प्रकट कर दी, वह घर कहाँ रह गया ? एक बार भी मनीश से समाचार पूछने का अवसर उसे नहीं मिला। कुमुद जहाँ नौकरी करता था, वहाँ ही इन्दिरा को जाना पड़ा।

ससुराल पहुँचने पर जेठानियों ने उसे तरह-तरह के ताने सुनाने शुरू किये। विलायत से लौटने वालों की स्त्रियाँ कैसी निर्लज्ज होती हैं इसके कई उदाहरण देकर वे कहने लगी थीं कि भविष्य में इन्दिरा भी वैसी ही निर्लज्ज हो जायगी। इस तरह की उक्तियों से वे हँस पड़ती थीं।

इन्दिरा इतनी संकुचित हो गयी कि प्रमोद का नाम तक भी वह मुँह से नहीं निकाल सकती थी।

इन्दिरा ने सोचा, जहाँ ही मैं क्यों न रहूँ, पति वापस आकर अवश्य ही मुझे ढूढ़ निकालेंगे। मेरा पता तो उनको लग ही जायगा और अवश्य ही मुझसे भेंट करेंगे। इस प्रकार अपने को आश्वस्त करके उसने कुमुद की स्त्री के साथ प्रवास की यात्रा की। जेठानियों से एक और खबर पाकर वह मर्माहता हुई थी। मिहिर की मृत्यु हो चुकी है, अनू विधवा हो

गयी है। अनू का समाचार कुछ दिन से क्यों नहीं मिल रहा था, इतने दिनों के बाद वह समझ गयी।

फिर धीरे-धीरे वर्ष बीतने लगा। इन्दिरा का मानसिक कष्ट बहुत कुछ कम हो चला। जेठानी अपने टूटे हुए स्वास्थ्य को सँभालने के लिए पुत्र-कन्याओं की देखभाल का भार उसके ही ऊपर छोड़कर विश्राम कर रही थी, अब इससे इन्दिरा को कोई कष्ट नहीं रहा। दिन भर काम में व्यस्त रहने से उसके दिन अच्छी तरह बीत रहे थे।

किसी-किसी समय जेठानी जब यह कहकर मजाक करती थी कि, 'पति के लौटने पर तो तुम खुले सिर उसके साथ हाथ मिलाओगी, साड़ी छोड़कर गाउन जूता मोजा पहिनकर खटाखट घूमती फिरोगी, तो इन्दिरा लज्जा से अत्यन्त संकुचित हो जाती थी। तब वह सोचने लगती थी कि, प्रमोद के लौटने पर वह उसके हाथपैरों पर गिरकर ऐसे अनाचारों से उसे रोकेगी। किसी तरह भी निर्लज्ज न हो सकेगी, प्राण निकल जाने पर भी नहीं। प्रमोद को भी वह साहब न बनने देगी। वहाँ जो कुछ हो गया, हो जाने दो। यहाँ गोबर खाकर पति प्रायश्चित्त करके अवश्य ही हिन्दू-आचार का पालन करेंगे। ऐसे ही सुख की आशा में पड़ी-पड़ी इन्दिरा का एक वर्ष समय बीत गया।

१४

कई महीने बीत चुके हैं। कुमुद बरीसाल में काम कर रहा था। नदी के किनारे उसका बंगला था। अचानक एक दिन उसके बंगले के सामने एक साहब आ गया। कुमुद का घरेलू नौकर बंगले के सामने कुछ काम कर रहा था। उसी से आगन्तुक ने पूछा—"यह बंगला किसका है ?" नौकर ने लम्बा सलाम करके कहा—"हजूर, यह डिप्टी साहब का बंगला है।"

उनका नाम क्या कुमुद कुमार है ?"

"जी हाँ, मैं तो उनका—

प्रमोद समझ गया कि यह उनका नाम नहीं जानता। उसने कहा—"बाबू घरमें हैं ?"

"जी नहीं।"

"कब लौटेगें ?"

"इसी समय आ सकते हैं।"

"तो मैं बरामदे में जरा बैठता हूँ। समझ गया ?" नौकर की अनुमति की प्रतीक्षा न करके ही साहब बरामदे में चला आया और एक कुर्सी पर बैठ गया।

एकाएक पासवाले कमरे में एक बच्ची की आवाज सुनाई पड़ी। बच्ची ने चिल्लाकर कहा—"मुझे पकड़ रही है काकी, मुझे पकड़ रही है।" कहते-कहते एक छोटी सी बालिका पर्दा हटाकर बाहर आयी। प्रमोद को उसने देखा नहीं। परदे को दोनों हाथों से बहुत खिसका दिया। कहा—"काकी मुझे पकड़ो मत।"

बच्ची को दूध पिलाने के लिए इन्दिरा उसको पकड़ रही थी। एकाएक उसने देखा कि एक साहब मकान में देख रहा है। डरकर इन्दिरा दूसरे कमरे में चली गयी।

साहब क्षण भर में चौंक उठा। और दूसरे ही क्षण में और कोई भी नहीं है, देखकर दीवाल पर टेककर उदास होकर खड़ा हो रहा। पीछे किसी के पैरों की आहट सुनकर घूमकर उसने देखा—मकान-मालिक आश्चर्य में पड़े हुए उसकी तरफ देखते-देखते चले आ रहे हैं।

साहब ने इस बार अग्रसर होकर तीखे स्वर से कहा—"आप भी पहचान नहीं रहे हैं क्या? मैं हूँ प्रमोद।"

"प्रमोद हो? कहाँ से आ गये? तुम तो विलायत गये थे न?"

"जी हाँ, दस दिन पहले मैं लौट आया हूँ।"

"उसके बाद? जिसके लिए तुमने जात धर्म सब नष्ट कर डाला, उसका क्या हुआ? फेल हो गये हो शायद?"

"फेल? मैं आई० सी० एस० हो गया हूँ।"

"पास हो गये हो? बहुत अच्छा। इधर ही कहीं तुमको नौकरी मिल गयी है क्या?'

प्रमोद ने तीखे स्वर से कहा—"डरने की बात नहीं है; जहाज से उतर कर दौड़ता हुआ स्वजनों के पास जाने पर मुझे जैसा व्यवहार मिल रहा है, उससे आप से भी मुझे विशेष कुछ दूसरा व्यवहार पाऊँगा, उसकी आशा मुझे नहीं है। आपके घर में रहकर आपको विपत्ग्रस्त नहीं करना चाहता। मेरी स्त्री आपके घर में है, यह खबर मुझे मिल चुकी है।"

प्रमोद के इङ्गित से कुमुद गरम हो उठा था। उसकी बातें

पूरी भी न हो सकी थीं कि वह बोल उठा—"आत्मीयस्वजन यदि तुम्हारे साथ भोजन करना न चाहें या स्त्रियाँ तुमको छूने को राजी न हों तो तुम नाराज हो सकते हो, किन्तु हम लोग तो जाति-धर्म छोड़ नहीं सकते।"

प्रमोद ने हँसकर कहा—"यह तो मैं इधर कई दिनों से ही समझ रहा हूँ! अपना सगा भाई शिक्षा के लिए विदेश जाकर निरुपाय होकर आचार-विचार से न रह सके, तो उसको छूने से जात चली जाती है और बड़े-बड़े अँग्रेज अफसरों के साथ होटलों में अखाद्य वस्तुयें दिन-रात निगलते रहने से तो जात नहीं जाती है! सनातन हिन्दू धर्म की कोई हानि नहीं होती है! अब मेरी स्त्री··· !"

कुमुद ने आँखें लाल करके कहा—"इसी क्षण तुम उसको ले जाओ! अपना धर्म तो तुमने नष्ट ही कर डाला है, अब उस कुल-स्त्री का परलोक बिगाड़े बिना तो तुम्हारा काम ही न चलेगा। जिस समाज में अब तुम उसको ले जाओगे, उसमें जाने की यदि उसकी इच्छा हो, तो तुम ले जा सकते हो। यदि वह सच्ची हिन्दू नारी होगी, तो वह कभी जाना न चाहेगी! किन्तु जब कि वह तुम्हारे हाथ में पड़ चुकी है तब तो उसको तुम्हारे साथ जाना ही पड़ेगा; यही मैं देख रहा हूँ! उसके भाग्य में यही लिखा है। जो हो, तुम खड़े रहो, मैं अभी··"

"सामने का परदा हटाकर भाभी ने पुकारा—"आओ बबुआ जी, अन्दर आओ!"

सूखे गले से प्रमोद बोला—"अन्दर मैं कैसे आऊँ, तुम लोगों की जाति न जायगी?

"इस कमरे में जल या खाने-पीने की कोई भी चीज नहीं है—यह तो रास्ता की तरह कमरा है—इसमें आने से कोई दोष न लगेगा। क्या करूँ, बबुआ जी, तुम्हारे भैया का जैसा आचार-विचार है! त्रिकाल सन्ध्या करना उनका नियम है! जरा सा भी आचार छोड़ने का उपाय नहीं है! सभी कहते हैं—हाकिम हो जाने पर यह सब विचार—आचार क्यों है जी? ऐसा तो कहीं नहीं दिखाई पड़ता। अरे भूलन, एक कुर्सी तो ले आओ।"

"कुर्सी की जरूरत नहीं है भाभी, मुझे शीघ्र ही वापस जाना होगा।"

"अभी तो स्टीमर जाने का समय नहीं है—"क्या छोटी बहू को लेकर तुम होटल में जाओगे? छिः छिः जो कुछ भी तुम क्यों न करो बबुआ जी, हम लोगों के सामने मत करो। दूर जाकर कहीं करो। इस बरीसाल में ही उसको मेम बनाकर मत घूमो!"

प्रमोद का दिमाग खौलने लगा। तीखे स्वर से वह एकाएक बोल उठा—"यदि वह मेरे साथ जाने में जरा भी डरती हो या उसे जरा भी आपत्ति हो तो यह तुम जान लो मैं कभी उसे बल-पूर्वक न ले जाऊँगा!"

"तुम तो विचित्र बातें करते हो बबुआजी? तुम्हारी बात सुनकर मुझे हँसी आ रही है! क्या कोई हिन्दू स्त्री अपनी जाति नष्ट करना पसन्द करती है? क्या कोई हिन्दू नारी धर्म नष्ट करना चाहती है? वह भी क्यों चाहेगी। मेम कहने से तो वह चिढ़ जाती है, बहुत ही बिगड़ उठती है, रोने लगती है। तुम लोगों के दल की स्त्रियों के कोई आचार-व्यवहार की बातें

सुनने से तो वह बिगड़ उठती है, अवाक् हो जाती है ! वह भला कब तुम्हारे साथ जाना चाहेगी ?"

कुमुद ने गम्भीर स्वर से कहा—"आर्य नारी का आचरण तो ऐसा ही होना स्वाभाविक है !"

प्रमोद ने धीरज खोकर कहा—"उसको एक बार बुलाइये, उसका क्या मत है मैं साफ पूछना चाहता हूँ।"

"अच्छा" कहकर मझली बहू चली गयी प्रमोद स्तब्ध होकर कुर्सी पर बैठ गया। कुमुद खड़ा है, इसकी धुन ही उसे नहीं थी। उसके मस्तिष्क में शायद रक्त खौलने लगा था।

मझली बहू दरवाजे तक इन्दिरा को खींचकर ले आयी। व्यंग्य के साथ कहने लगी—"आओ, न, हम लोगों को देखकर लजा रही हो, अब तो वर का हाथ पकड़कर दुनियाँ भर के लोगों के साथ तुमको घूमना पड़ेगा ! इतना बड़ा घूँघट क्यों ?"

प्रमोद उठ खड़ा हुआ। गंभीर कंठ से बोला—"मेरे साथ चलने में तुमको जरा भी डर हो, कुछ भी हिचक हो, तो मैं बलपूर्वक तुमको न ले जाऊँगा ! तुम्हारी इच्छा क्या है, मुझे साफ-साफ बताओ !"

घूँघटवाली इन्दिरा थर-थर काँप रही थी। मझली बहू ने यह दशा देखकर हँसकर कहा—"काँपती हो क्यों—किस बात का इतना भय है ? घूँघट खोलकर बातें करो, मुँह ऊपर उठाओ। तुम्हारी यह हालत देखकर बबुआजी यही सोच रहे होंगे कि ऐसी स्त्री को मैं कैसे शिक्षित नये आलोकवाली स्त्रियों के साथ रख सकूँगा ? यदि मेम बनने की इच्छा हो तो इनकी जैसी रुचि हो, वही करो। बबुआजी इसी दम तुमको अपने साथ होटल

में ले जाने को खड़े हैं। वहाँ भी क्या ऐसे ही घूँघट काढ़े जाओगी!"

इन्दिरा ने कुछ भी नहीं कहा, किसी तरह की चंचलता भी उसने नहीं प्रकट की। प्रमोद ने कहा—"मैं समझ गया। तुम मेरे साथ जाना नहीं चाहती। ठीक है यहीं रहो। मुझे भी कोई आपत्ति नहीं है।"

यह कहकर प्रमोद मकान से बाहर निकल गया। बाहर जाते किसी का आर्त्त स्वर उसे सुनाई पड़ा। वह ठिठककर खड़ा हो गया। फिर उसे कोई आहट नहीं मिली। अपना भ्रम समझ कर प्रमोद आगे बढ़ा। उसी दिन वह बरीसाल छोड़कर चला गया।

१५

इन्दिरा के जीवन के फिर दो वर्ष बीत गये। जिस दिन प्रमोद चतुर्दश वर्षीया इन्द्रिरा को ससुराल में रखकर विलायत चला गया था, उस दिन से लगातार दो वर्ष तक उसका जीवन विचित्र दशा में बीता था। प्रथम दो वर्ष के समय और द्वितीय दो वर्ष के समय में आकाश-पाताल का भेद रहा। दो वर्ष तक उसे आशा थी, आकांक्षा थी। वह एक-एक दिन गिनती रही। किन्तु अब वह हालत नहीं है। इन चार वर्षों में कैसा परिवर्तन हो गया, कैसा काण्ड हो गया, इसको मानो आज भी इन्दिरा

समझ न पा रही थी। प्रमोद एक दिन आया था, किन्तु वह क्या स्वप्न था या सच था ? अपने हृदय में वह उस घटना को सपना ही समझती थी।

जेठ-जेठानी के सामने पति का हाथ पकड़ कर इन्दिरा कैसे चली जाती। और जिस समाज में उसे जाना था, उसमें वह रह कैसे सकती थी। अशिक्षिता स्त्री के लिए क्या उसमें स्थान है ? दो चार दिन बीतने पर तो अवश्य ही प्रमोद इन्दिरा को निकाल बाहर करता। उस हालत में इन्दिरा का इहकाल-परकाल दोनों ही नष्ट हो जाते। उससे तो यही अच्छा हुआ है। धर्म परकाल भी बच गया। जाति में, धर्म में, कुल में उसको जगह है। इस दृष्टि से विचार करने से कौन कहेगा कि इन्दिरा का भाग्य अच्छा नहीं ?

फिर भी इन्दिरा यह नहीं मान सकती कि सचमुच ही प्रमोद उसे छोड़कर चला गया है। इन्दिरा सचमुच ही प्रमोद के साथ जाना नहीं चाहती, क्या प्रमोद को इस बात पर विश्वास हो गया है ? क्या प्रमोद ऐसी गलती कर सकता हैं ? जिस दिन प्रमोद स्वप्न की तरह आया था, उस दिन इन्द्रिरा से कौन-सा अपराध हुआ था, आज भी इन्दिरा वह बात समझ नहीं पाती। जेठ और जेठानी के सामने प्रमोद की बातों का वह क्या उत्तर देती। और उत्तर की भी क्या जरूरत थी। प्रमोद क्या नहीं जानता कि ये दो वर्ष इन्दिरा ने किस तरह बिताये हैं।

इन्दिरा तो चाहती थी कि पति के आने पर विधिपूर्वक प्रायश्चित कराकर वह पक्की हिन्दू स्त्री की भाँति दाम्पत्य जीवन बितावेगी। केवल साहब मेम की तरह रहने में ही उसे आपत्ति थी। किन्तु इसी लिए वह प्रमोद के साथ न जायगी यह भी

क्या सम्भव है ! तो फिर प्रमोद क्यों निर्मम भाव से दो-एक प्रश्न करके ही चला गया ? अपने प्रश्न का उत्तर पाने के लिए उसने उसे एकान्त में क्यों नहीं बुलाया ? और उत्तर भी कैसा ? क्या वह नहीं जानता ? क्या वह समझ नहीं सकता ? इन्दिरा का मतामत जानने की या पूछने की उसे जरूरत ही क्या थी ?

क्या ही दुर्भाग्य है ? क्या इन्दिरा को छोड़ देने का यह एक बहाना था ? यदि प्रमोद की यही इच्छा थी, तो इस तरह फुसला कर रख जाने की जरूरत ही क्या थी। एक-एक करके सभी तो इन्दिरा को छोड़ गये हैं। माता, सास, ननद, पिता सभी का स्नेह उसे पहले एक-एक बार मिला था। बाद को उसको सबने छोड़ दिया। उसके भाग्य में ही लिखा है। प्रमोद भी केवल दो दिन के लिए स्नेह-प्यार दिखाकर यदि उसे छोड़कर चला गया, तो उसने भाग्य के अनुकूल ही काम किया है। किन्तु क्या यह सत्य है ? यह क्या है ?

नहीं, नहीं, यह बात कदापि सच नहीं हो सकती। यदि यह सच हो कि पति ने उसे छोड़ दिया, तो इन्दिरा इस जीवन को किस आशा से धारण कर सकेगी। प्रमोद अवश्य ही फिर विलायत चला गया है। वह फिर इन्दिरा के पास आवेगा। इस बार उसके आने पर इन्दिरा लज्जा न करेगी। मुँह से कुछ न कह सकने पर भी, वह उसके पैरों पर जा गिरेगी। ऐसी भूल वह दूसरी बार न करेगी। किन्तु कब ? कब वह स्वप्नवत् दिन आवेगा क्या सारा जीवन उसे इसी तरह बिताना पड़ेगा ? किन्तु अब तो दिन बिताया नहीं जा सकता।

समय तो किसी की प्रतीक्षा नहीं करता। उसकी गति कभी रुकती नहीं। वह बराबर चलता रहता है ! कुमुद बहुत दिनों

के बाद अपने गाँव के मकान पर जाने की तैयारी कर रहा था। इन्दिरा का हृदय आशा से विभोर हो उठा। वह आनन्द का आभास पाने लगी। इसी मकान में उसका पति छिपा होगा। उसके आने की प्रतीक्षा करता होगा।

कुमुद गाँव के अपने मकान में गया। दो ही दिन बाद स्त्री को साथ लेकर ससुराल चला गया। जेठानी के मायके चले जाने पर इन्दिरा अकेले उस मकान में पड़ी रही। प्रमोद के हिस्से में ताला बन्द था। पति तो सब कुछ उसके पास ही रख गये हैं! तो भी इन चार वर्षों में इन्दिरा ने उन सबका कुछ भी स्पर्श नहीं किया है, अब भी नहीं कर सकती। उसके आने पर ही तो वह गच्छित धन पर दृष्टि डालेगी। उसका व्यवहार करेगी। उसे अपने उपयोग में लावेगी। जब तक पति नहीं आते, इसी तरह दिन बीतते रहें न। इसमें हानि ही क्या है।

इन्दिरा अकेली समय बिता रही है। बड़ी जेठानी बीच-बीच में बुलाकर एक-एक बात पूछ लेती हैं। इन्दिरा कोई उत्तर नहीं दे सकती। जेठानी मन्तव्य प्रकट करती है—"बहू क्या गूँगी हो गयी?"

ऐसे ही महादुःख में इन्दिरा समय बिता रही थी। एक दिन अचानक एक परिचित स्त्री उसके गले से लिपटकर मीठे स्वर से बोली उठी—"इन्दु!"

मृण्मयी तो जानती ही थी कि इन्दिरा अपने जेठ कुमुद के घर गयी है। उसे विश्वास था कि प्रमोद के घर गयी है। उसे विश्वास था कि प्रमोद के साथ वह सुख से होगी। फिर भी उसकी बेचैनी बनी रहती थी। बचपन से ही अनु-मनु के साथ उसका जो स्नेह-सूत्र बँध गया था वह अभी तक छिन्न

नहीं हुआ था। इधर हाल में जब मृण्मयी ने सुना की कुमुद लाहर से घर आ गया है और अपने बड़े भाई के साथ रहता है, तब पति से अनुमति लेकर वह बहुत दिनों के बाद अपने नैहर चली आयी।

फिर मृण्मयी ने पुकारा—"बहू, इस तरह अवाक् होकर तुम क्यों ताक रही हो? तुम ऐसी क्यों हो गयी हो? प्रमोद भैया कहाँ है? वह क्या अभी तक नहीं आया?"

धीरे-धीरे साँस खींचकर इन्दिरा ने कहा—"मैं नहीं जानती!"

"जानती नहीं हो? यह कैसी बात कह रही हो? इतने दिन क्या तुम मझली बहू के साथ ही रही?

"हाँ!"

"मैंने तो सुना था कि वे विलायत से वापस आ गये। क्या तुम्हारे पास नहीं गये थे?"

"गये थे!"

"तो फिर? चुप मत रहो इन्दु! तुमको देखकर मुझे भय मालूम हो रहा है! क्या हुआ है, सब खोलकर बताओ!"

धीरे-धीरे मृण्मयी ने इन्दिरा के मुँह से सब समाचार सुन लिया। सुनकर वह स्तब्ध हो रही। कैसा सत्यानाश हो गया? प्रमोद ने क्या कर डाला। हिन्दू कुलवधू की यह साधारण लज्जा भी क्या वह न समझ सका है? वह ऐसा भ्रान्त क्यों हो गया था? इस अभिमान में प्रमोद न मालूम कहाँ चला गया?

इन्दिरा ने गम्भीर चेहरे से कहा—"मनीश भैया अपने व्यवसाय के सिलसिले में तीन वर्षों से विदेश में पड़े हैं! उनके

न रहने से ऐसी अवस्था हो सकी है ! भाग्य का चक्र ही ऐसा चल रहा है ! अनु के पास एक चिट्ठी लिख देती हूँ। शायद उसको कोई खबर मालूम हो !"

१६

पिछले दो वर्षों से अनू और उसकी सास दोनों ही संसार का सारा सम्बन्ध छोड़कर शोक के अन्धकारपूर्ण गड्ढे में पड़ी हुई जीवन बिता रही हैं। अनू जानती है कि इस जगत् में उसका कोई नहीं है—कुछ भी नहीं है। कोई भी अपना नहीं है, कोई सागा-सम्बन्धी नहीं है। किन्तु मृणमयी के पत्र में यह कैसी खबर आज उसे मिली ? आज उसके मृत निस्तब्ध प्राण में यह कैसा आन्दोलन उठ पड़ा है ? प्रमोद—उसका छोटा भैया, क्या लापता हो गया ? इन्दिरा अकेली उपेक्षितावस्था में दिन बिता रही है ?"

मृणमयी ने जो पत्र भेजा है उसमें उसने लिखा है—"तुमको उठना पड़ेगा, अपने छोटे भैया का पता लगाना पड़ेगा ! इन्दिरा का मुँह देखना पड़ेगा। नहीं तो देरी करने से प्रमोद शायद फिर न मिलेगा।" अनू का पुराना भ्रातृस्नेह उमड़ उठा। इतने दिनों तक शोक-सन्तप्त अवस्था में वह विरक्त भाव से दिन बिता रही थी, परन्तु जो भ्रातृप्रेम बहुत दिनों तक दबा हुआ था वह उफना उठा।

अनु आ गयी। इन्दिरा को गोद में लेकर बैठ गयी और मृण्मयी के मुँह से आदि से अन्त तक सब समाचार सुन लिया।

मृण्मयी ने अन्त मे कहा—"अब उपाय क्या है?"

"उपाय? उपाय यह है कि तुम अपने पति से कहकर पता लगाओ, मैं भी अपनी सास से कहती हूँ, वे अपने आदमियों को पता लगाने के लिए कह दें! बहू, तुम मेरे साथ चलो! चलोगी मेरे घर?"

इन्दिरा इस बार भी उत्तर न दे सकी। केवल औंधी होकर अनू के पैरों पर गिर पड़ी। अनु ने उसको फिर अपनी गोद में खींच लिया।

मझली बहू ने कहा—"यह कैसे होगा? मैं क्या इसको छोड़ सकती हूँ। बबुआ जी मेरे पास ही इसे रख गये हैं!"

"मेरे भी वे भैया हैं! मैं उनकी स्त्री को अपने पास ले जा सकती हूँ!"

मझली बहू का धीरज धीरे-धीरे गायब होता जा रहा था। उसने कहा—"तुम जरूर रख सकोगी! इसीलिए तो इतना खिला-पिलाकर मैं इसको रखती हूँ!"

"इसको तो किसी बात की कमी नहीं है मझली बहू! केवल एक ही चीज का अभाव है। वही चीज उसको मिलनी चाहिये। उसको तुमलोग पकड़ मत रखना!"

"हम लोगोंने पकड़ रखा है? उल्टी बदनामी? अपने साहब पति के साथ वह चली जा सकती थी। इतने दिनों में मजा भी मिल गया होता!"

"इसी लज्जा से इतना बड़ा सर्वनाश हो गया है भाभी! अब यह चेष्टा तुम मत करो! इसको मेरे साथ जाने दो!"

"चेष्टा कैसी ? क्या हम लोगों ने ही तुम्हारे भैया को मना किया है कि इसको अपने साथ मत ले जाओ !"

"भगवान् जानते हैं। अब मैं छोटी भाभी को साथ लेकर जा रही हूँ ! चलो बहू !"

मझली बहू की आँखें एक दम लाल हो गयीं। वह क्रोध से काँपने लगी। कुमुद को भी अनू को बाधा देने का साहस नहीं हुआ। परम लज्जावती इन्दिरा को भी एकदम निर्भीक देखकर वे अवाक् हो गये। कुछ भी बोलने का साहस उनको नहीं हुआ। मझली बहू भी अच्छी तरह समझती थी कि, इन्दिरा यदि जाना चाहेगी तो कोई भी उसे रोक नहीं सकता। बड़ी बहू अर्थात् इन्दिरा की बड़ी जेठानी मन ही मन खुश ही हुई। मझली बहू बिना पैसे की दासी पाकर गृहस्थी चलाने में आराम कर रही है; यह उनको खलता था। इस कारण इन्दिरा का चला जाना उनके लिए दुःखकर नहीं जान पड़ा।

इन्दिरा अनु के साथ उसकी ससुराल में ही रहने लगी। पाँच छः महीने बीत गये। अधीर आग्रह से वह खिड़की के पास बैठकर पति के आगमन की प्रतीक्षा करती रहती थी। अनू को पास पाकर उसकी मूक लज्जा का आवरण हटता जा रहा था। दिन पर दिन बीतते जा रहे हैं। वह एक दम निर्जीव-सी होने लगी। उसका उत्साह खो गया। वह जड़वत् हो गयी। अनू उसको बार-बार सान्त्वना देती रहती थी, किन्तु उसका विशेष कुछ फल नहीं होता था।

एक दिन अनू के पास मृणमयी की एक चिट्ठी आयी। उसमें लिखा था कि, मनीश विदेश से लौट आया है और अब कलकत्ते में रह रहा है। अनू ने सास से कहा—"माँ, चलिये काली जी

का दर्शन कर आवें। यहाँ देखभाल करने वाले लोगों का अभाव नहीं है। हम लोगों के थोड़े दिनों के लिए चले जाने से यहाँ काम-काज की कोई हानि नहीं होगी।" सास राजी हो गयीं। तीनों की कलकत्ता-यात्रा शुरू हुई।"

ज्योंही अनू ने मनीश को प्रणाम किया त्यों ही मनीश चौंक कर बोल उठा—"तुम कौन हो? तुम क्या—"

"मनीश भैया, मैं हूँ अनू—"

"अनू? प्रमोद की बहन अनू? वही छोटी सी बच्ची अनू तुम ही हो?"

अनू चुप हो रही। थोड़ी देर बाद अश्रुपूर्ण नेत्रों से मनीश बोला—"क्या किसी जरूरत से आयी हो अनू?"

"जरूरत? मनीश भैया, तुम भी क्या कुछ नहीं जानते? मेरा छोटा भैया कहाँ है? छोटे भैया की खबर क्या तुमको मालूम है?"

मनीश धीरे-धीरे एक कुर्सी खींचकर बैठ गया। बोला—"क्यों, तुम लोग क्या कुछ भी नहीं जानती?"

"नहीं, बताओ वह कहाँ है? अच्छी तरह है तो? देश में ही है न?"

"हाँ?"

"कहाँ है?"

"वह तो इस समय मैं बता नहीं सकता। किन्तु फिर वह विलायत नहीं गया, यही मैं जानता हूँ।"

"तुमको कितने दिनों की खबर मालूम है!"

"डेढ़ वर्ष पहले का समाचार जानता हूँ। उन दिनों वह बम्बई में था।"

"उसके बाद फिर उसकी खबर तुमने नहीं ली ?"

"नहीं।"

"क्यों मनीश भैया। तुम तो उसके भाई से भी बड़े थे न ?"

"हाँ अनू, इसी कारण फिर उसका समाचार जान लेने की इच्छा नहीं हुई।"

अनू थोड़ी देर तक स्तब्ध हो रही। फिर बोली—"समझने की भूल से ही हो, या जिस कारण ही हो, जो आघात उसे मिला है, उससे वह सब कुछ ही कर सकता है, किन्तु जब कि वह विलायत नहीं गया है, सकुशल मौजूद है, तब बताओ कि उसने ऐसा कौन काम किया है जिससे तुम उसका समाचार जानना नहीं चाहते। तुम लोगों के ही व्यवहार से उसका मन इतना चिढ़ गया था कि एक बालिका बधू की स्वाभाविक लज्जा को भी वह समझ न सका।"

"हमलोगों के व्यवहार से ? इसका क्या मतलब है अनू ? हमलोगों ने तो उसके प्रति किसी तरह का दुर्व्यवहार नहीं किया ? ऐसी बात तुम क्यों कहती हो ?"

"खूब किया है। अच्छा, उसके सम्बन्ध में क्या जानते हो पहले तुम बताओ।"

"अनू, मैं तुमको क्या बताऊँ ? वह विलायत से कब लौटा था, इसकी मुझे जानकारी नहीं थी। मैं उन दिनों अपने व्यापार वाणिज्य के सिलसिले में अनेक स्थानों में घूम रहा था। डेढ़ साल पहले जब मैंने उसे बम्बई में देखा, तो अवाक् हो गया। बातचीत में उसने कहा कि आत्मीय स्वजनों में से किसी ने भी मुझे अपने साथ नहीं रखना चाहा, सभी ने घृणा से मुझे त्याग दिया। यहाँ तक कि विवाहिता स्त्री ने भी। ऐसी हालत मैंने धर्मान्तर ग्रहण कर लिया है।"

वह क्या मुसलमान हो गया है ?"

"पूछता हूँ, उसकी स्त्री कहाँ है ?"

"मेरे साथ ही आयी है। तुम्हारी स्त्री के साथ उस कमरे में बैठी है। क्या भैया ने फिर विवाह कर लिया है ?"

"हाँ।"

"माथे पर हाथ रखकर अनू ने पूछा—"तो भी बताओ वे कहाँ हैं ?"

"क्यों उसकी खोजखबर ले रही हो अनू ? लेने से सुख न पाओगी।"

"वह तो मेरा भाई है। छोटा भैया है। इन्दिरा को एक बार उसके पैरों पर गिरना ही पड़ेगा। बता दो वह कहाँ है ?"

"सुनना ही चाहती हो तो सुनो। वह ईसाई हो गया है। उसने मेम से विवाह कर लिया है। मुझे उसके इस दुष्कर्म से उसपर इतनी घृणा हो गयी है कि मैंने फिर दूसरी बार मुलाकात नहीं की। वह इस तरह जीवन बिता रहा है कि उसके साथ भेंट करना भी तुम लोगों के लिए असम्भव है। इसके अलावा, तुम लोग जाओगी कहाँ ? वह इस समय कहाँ है, यह मैं नहीं जानता। वह अब तुम लोगों के लिए मृतवत् है।"

"नहीं, फिर भी यह बात मत कहो। हमलोग ही उसके लिए मृत हैं।"

मनीश ने दरवाजे पर खड़ा होकर देखा, एक मुरझायी हुई, संज्ञाशून्य स्त्री को गोद में लिये अनू एक गाड़ी पर सवार हो गयी।

मनीश ने आँखें पोछते-पोछते सोचा—"यह वही अनू है, जिसके

मुँह की बात कोई कभी सुन नहीं सकता था। "धन्य है शोक! तुम मनुष्य को इतना बदल सकते हो? तुम उसमें इतनी शक्ति का संचार भी कर सकते हो?"

१७

तीनों स्त्रियों का जीवन किसी तरह बीतने लगा। दिन बीतता था, रात आती थी, रात बीत जाती थी, दिन आता था। एक वर्ष बीत जानेपर अनू ने मानो इन्दिरा में कुछ परिवर्तन देखा। आज कल वह पहले की तरह मुँह बन्द करके पड़ी नहीं रहती। कामकाज में कुछ उत्साह दिखाती है। किन्तु रोज ही कुछ-कुछ ज्वर-सा हो जाता है, दुर्बलता जान पड़ती है, कुछ-कुछ खाँसी आती रहती है। फिर भी, मुख की शोभा कुछ बढ़ती जा रही है। अनू ने कुछ चिन्तित हो कर वैद्यजी को बुलवाया। वैद्यजी आये, इन्दिरा की नाड़ी-परीक्षा करके उन्होंने दवा की व्यवस्था की। कुछ दिनों तक उनकी दवा का सेवन किया गया। फल कुछ भी नहीं हुआ। तब डाक्टर बुलाये गये। इन्दिरा ने कुछ भी आपत्ति नहीं की। उसने अनू के किसी काम का विरोध नहीं किया। वह अनू की प्रत्येक बातपर मुसकुरा उठती थी। उसकी मुसकुराहट से अनू प्रसन्न नहीं होती थी, वरन् उसके चित्त में आतङ्क छा जाता था।

अनू ने मृण्मयी को लिखा था—"तुम अब छोटे भैया का पता लगाने की चेष्टा मत करना, उसका पता मुझे लग गया है।"

मृण्मयी को इस बात का कुछ भी अर्थ समझ में नहीं आया। उसने एक चिट्ठी लिखी, परन्तु उस चिट्ठी का कोई उत्तर उसे नहीं मिला।

कुछ दिनों के बाद अनू ने मृण्मयी को लिखा—"अब तो ऐसा जान पड़ता है कि बहू भी मुझे छोड़कर चली जायगी। तुम्हारे सिवा परामर्श देने वाला तो कोई है नहीं। मैं क्या उपाय करूँगी ? चिकित्सा कराकर मैं थक गयी। कुछ भी फल नहीं हो रहा है।"

मृण्मयी ने उत्तर दिया—"जलवायु का परिवर्तन कराकर देखो, कुछ फल होता है या नहीं। इनका भी स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता। समुद्र के किनारे जाने का विचार कर रहे हैं। इन्दिरा की बीमारी में भी यही व्यवस्था काम करेगी। अच्छा होता कि हम सभी कहीं समुद्रतट पर चले जाते।"

अनू ने सास से कहा—"माँ! चलो न कुछ दिन पुरी में चलकर रहें!"

सास ने कहा—"कुछ दिनों के लिए क्यों बेटी ? चलो सदा के लिए पुरी या काशी कहीं रहने की व्यवस्था की जाय। अब इस श्मशान में मैं रह नहीं सकती!"

नीलसिन्धु तटवर्ती नीलमाधव-क्षेत्र में कुछ दिन सबने विशेष उत्साह से दिन बिताये। दोनों समय सभी समुद्र के किनारे टहलने जाते थे। किन्तु कुछ ही दिनों के बाद सहसा एक दिन इन्दिरा को खूब जोरदार ज्वर आ गया। वह बिछौने पर पड़ गयी।

मृण्मयी के पति ने परामर्श दिया—"चलो दक्षिण के वाल्टे-यर या विजगापट्टम् किसी स्थान में चलकर रहें !"

किन्तु अनू की सास और इन्दिरा ने इस विचार का समर्थन नहीं किया। इस आपत्ति से अनू दुविधा में पड़ गयी। क्या करना ठीक होगा, यही वह सोच रही थी कि इसके बीच इन्दिरा का ज्वर छूट गया। अनू के मन में कुछ आशा का संचार हुआ।

बिछौने पर लेटी हुई एक दिन इन्दिरा किसी लिखी हुई कापी पर रह-रहकर अपनी दृष्टि डाल रही थी। मृण्मयी ने उसके पास आकर कहा—"अभी-अभी ज्वर छूटा है ! दुर्बल अवस्था में पढ़ने की कोई आवश्यकता नहीं है !"

इन्दिरा ने हँसकर कापी को अपने आँचल में छिपा दिया।

मृण्मयी ने पूछा—"यह कैसी कापी है इन्दु ?"

इन्दिरा ने कोई उत्तर नहीं दिया, वह चुप हो रही। मृण्मयी ने उस कापी को जबर्दस्ती खींच कर देखा। क्या दिखाई पड़ा ? वही बचपन की प्रिय वस्तु, प्रमोद की रचनाएँ—कविताएँ। दुःख के बीच भी जरा हँसकर वह बोली—"इसको तुम कहाँ पा गयी बहू ?

"बहुत दिनों से मैं इसे अपने पास रखती हूँ ! यह टूटे हुए बक्स में पड़ी हुई थी !"

"किस कविता को तुम अभी पढ़ रही थी ?" यह कहकर ही उसने इन्दिरा की अँगुली के पसीने के दाग वाले स्थान को देख लिया। मृण्मयी पढ़कर आत्मविस्मृत सी हो गयी। इन्दिरा ने एक दूसरी कविता दिखाकर कहा—"इसे पढ़कर देखो !"

मृण्मयी उसे भी पढ़ गयी। उसका चेहरा गम्भीर हो गया।

कुछ भी उसने नहीं कहा। इन्दिरा ने हिचक कर कहा—"तुमको एक बात कहना चाहती हूँ !"

"कहो !"

"यदि किसी दिन वे आ जाँय, तो यह कापी उनको लौटा देना। और वे अपने बक्स इत्यादि जो सब चीजें मेरे पास रख गये थे, उन्हें भी दे देना !"

"क्यों तुम निराश हो रही हो बहू ! वे अवश्य ही किसी दिन लौटेंगे। अपने ही हाथ से तुम यह सब दे देना !"

किन्तु उतने दिन यदि मैं प्रतीक्षा न कर सकूँ ?"

क्यों ? तुम तो बहुत अच्छी हो इन्दु ! हताश मत हो !"

इन्दिरा सहसा जरा उत्तेजित होकर बोली—"हताश किस लिए ? वहाँ तो वे मेरा अपराध न ग्रहण करेंगे, उनके मन की बात मैं समझ न सकी, इसके लिए मुझे ठोकर लगाकर ठेल न देंगे ! आशा-निराशा के हाथ में तो मुझे फिर न रहना पड़ेगा !"

मृणमयी इन्दिरा का ललाट छूकर चौंक उठी। घबड़ाहट के साथ उसने अनु को और पति को बुलवाया। इन्दिरा की अवस्था देखकर आशुतोष बाबू तुरन्त डाक्टर बुलाने के लिए बाहर निकल पड़े। अनू ने लम्बी साँस लेकर कहा—"इसबार अवश्य ही इन्दिरा चली जायगी। अब ज्यादा देर नहीं है !"

इन्दिरा को जरा तन्द्रा आ गयी थी। वह एकाएक जाग उठी और व्याकुल कण्ठ से बोली—"अब जरा देर नहीं है ! क्या वे आ गये ?"

अनू ने रुँधे गले से कहा—"कौन आयेगा बहू ?"

इन्दिरा ने फिर उत्तर नहीं दिया। करवट बदल कर लेट

गयी। फिर वह तन्द्राच्छन्न हो गयी। धीरे-धीरे उसने कविता के दो पद उच्चारण किये।

अनू उसका माथा अपनी गोद में लेकर चुपचाप बैठी रही। मृणमयी आँसू बहाने लगी।

डाक्टर ने आकर देखा और कहा—"अचानक ज्वर खूब जोर से आ गया था, फिर उसी तरह जोर से उतर गया, अवस्था अब खराब हो गयी है! आप लोग डाक्टर पी० के० मुखर्जी को बुलाइये! वे यहाँ के सिविल सर्जन हैं! आदमी तो बड़ा शराबी है! किन्तु चिकित्सा में निपुण है!"

× × ×

डाक्टर पी० के० मुखर्जी आये। रोगी की अवस्था देखकर मुँह टेढ़ा करके वे आशु बाबू से अँग्रेजी में प्रश्न करने लगे।

एकाएक डाक्टर ने चौंककर देखा, रोगिणी तीखी नजर से उनकी तरफ देख रही है! उसकी अस्वाभाविक दृष्टि देखकर आशु बाबू भी डर गये। बोले—"देखिये, देखिये, पलकें गिर नहीं रही हैं क्यों? इस तरह आपको वे क्यों देख रही हैं?"

डाक्टर रोगिणी के मुँह के पास झुक पड़े! अपनी जेब से स्टेथेसकोप निकालते-निकालते उन्होंने पूछा—"आपको कैसा कष्ट हो रहा है?" उसी क्षण आशु बाबू भी झुककर बोले—"मूर्च्छा! मूर्च्छा!"

डाक्टर जड़ की भाँति स्तब्ध होकर बैठे रहे। उनके हाथ से स्टेथेस्कोप गिर गया था। इसकी भी सुधि उनको नहीं थी। अनू और मृणमयी दोनों सेवा में लगकर, उसकी चेतना लाने की कोशिश करने लगी।

इन्दिरा को कुछ सचेत न देखकर अनू ने पुष्टिकर पीने की दवाई उसके मुँह के पास रखकर कहा—"इसे पी जाओ।"

"ननद !"

"क्या !"

"आ गये क्या ?"

"हाँ !"

"कहाँ ?"

"यही तो हैं !"

स्तम्भित होकर डाक्टर ने देखा। फिर वह अपलक दृष्टि उनके चेहरे पर सन्निविष्ट हो गयी। आर्तस्वर निकल पड़ा—"फिर फिर वही पोशाक ! अब भी परीक्षा ?"

इस बार डाक्टर का सिर से पैर तक काँप उठा। वे चिल्ला उठे—

"इन्दिरा—इन्दिरा !"

इन्दिरा के ओठों पर क्षीण हँसी दिखाई पड़ी। उसने मीठे स्वर में कहा—"इस बार तो मैं पहचान गयी। अब तो मैं लज्जा न करूँगी। अब तो तुम जा न सकोगे ?"

इन्दिरा के पसारे हुए हाथों पर डाक्टर लुढ़क पड़ा। आर्त्त-कंठ से रो उठा—"यह क्या—तुमने यह क्या कर डाला इन्दिरा ?

बड़ी देर तक कमरा निस्तब्ध था। फिर मानो नींद टूटने पर इन्दिरा रो उठी—"वे शायद चले गये। मैं पहचान न सकी इसलिए। मैंने लज्जा की है इस कारण शायद फिर नाराज हो गये हैं।"

प्रमोद उठ बैठा। आँखें पोंछते-पोंछते रुँधे हुए गले से बोला—"इन्दिरा—यहीं तो मैं हूँ ! मैं तो कहीं भी नहीं गया—यहीं तो मैं तुम्हारे सामने हूँ।"

"फिर जाओगे नहीं ?"

"नहीं !"

"दो वर्ष क्या पूरे हो गये ? ओः बापरे ! क्या इतने दिन दो वर्ष में होते हैं ?"

आशु बाबू ने प्रमोद के कंधे पर हाथ रखकर कहा—"अवस्था समझकर आप जरा धीरज रखिये ! मैं दूसरे डाक्टर को बुलाता हूँ !"

शामको अस्त होने वाले सूर्य की लाल किरणें खिड़की के भीतर से रोगिणी के सूखे चेहरे और रूखे बालों पर पड़ी हुई हँस रही थीं। इन्दिरा तन्द्राच्छन्न अवस्था में ही पड़ी हुई थी ! प्रमोद भी उसके पास बैठा हुआ केवल उसके मुँह की तरफ देख रहा था। मृण्मयी और अनु बीच-बीच में दवा-पथ्य खिलाती जा रही थीं। एकाएक एक बार जागकर इन्दिरा ने पुकारा—"ननद !" अनु उसके पास आ गयी।

इन्दिरा ने कहा—"अबतक मैं सपना देख रही थी।"

"कैसा सपना ?"

"बहुत तरह की बातें हैं। देख रही थी कि वे आ गये हैं।"

इतनी देर में इन्दिरा की विकारहीन स्वस्थ आँखें और शान्त मुखश्री देखकर अनू को कुछ आशा हुई और वह पथ्य तैयार करने के लिए चली गयी।

प्रमोद ने पुकारा—"इन्दिरा !"

इन्दिरा ने चौंककर आँखें बन्द कर लीं। शायद उसने सोचा अभीतक सपने का नशा बीता नहीं है।"

प्रमोद बोला—"इन्दु, इधर देखो तो, मैं फिर आ गया हूँ। देखो इन्दिरा—यह सपना नहीं है, यह सत्य है।"

इन्दिरा ने देखा। आँसू का स्रोत बह चला। उसने अपने

क्षीण हाथों को पसार कर प्रमोद के पैरों की धूलि सिर पर उठा ली। बोली—"तुमने मुझे क्षमा कर दी?"

"तुमको क्षमा इन्दिरा! तुम मुझे क्षमा कर सकी हो कैसे? बुद्धि की भूल से सहन-शक्ति खोकर मैंने अपना और तुम्हारा सत्यानाश कर डाला है।"

इन्दिरा ने पति के मुँह की तरफ देखकर क्षीण स्वर से कहा—"तुमको क्या हुआ है? तुमने क्या किया है? तुम अच्छी तरह हो तो?"

"अच्छी हो जाने के बाद तुम सब सुन लेना इन्दिरा। किन्तु तुमको क्या हो गया है? तुम बीमार कैसे पड़ गयी?"

"क्यों?" इन्दिरा मुस्कुरा उठी। बोली—"बल्कि, तुम यही पूछ सकते हो कि इतने दिन तुम जीवित हो कैसे?"

बेधड़क बातचीत करने वाली इस नारी की छाती के पास प्रमोद लोट-पोट हो गया। इन्दिरा उसके माथे के पास अपना मूँह ले जाकर धीरे-धीरे बोली—"सौभाग्य से ही मैं बीमार पड़ गयी थी। इसलिए तो तुम आये? अब तो मेरा अन्त न हो जाने तक तुम छोड़कर न जा सकोगे?"

प्रमोद उठ बैठा। रुँधे गले से बोला—"इसी तरीके से क्या तुम बदला लेना चाहती हो इन्दिरा! इस बार क्या तुम भी मुझे छोड़ जाओगी?"

"अब मैं बची रहकर क्या करूँगी! तुम तो मुझे क्षमाकर चुके हो। इतनी ही मुझे चाह थी। इतनी ही मेरी इच्छा थी। मेरी इच्छा पूरी हो गयी। मैं और तो कुछ चाहती नहीं हूँ। अब—अब—तुम मुझे फिर छोड़ जाओगे। तुम्हारे बिना मैं

जीवित रहकर क्या करूँगी। मुझे अब बचे रहने की जरूरत क्या है?"

"नहीं, नहीं इन्दिरा! मेरी अब कालिख धोकर क्या तुम अपने पास मुझे जगह न दे सकोगी? सकोगी, सकोगी?"

"मेरे पास जगह चाहते हो? तुम क्या ले सकते हो? तुम तो—"

"जान पड़ता है, मेरा सब समाचार तुम सुन चुकी हो। मैं तुमको जो वचन देकर विलायत गया था, उसका मैंने पालन किया। मैं ठीक समय पर अपने कथनानुसार तुम्हारे पास आया। स्वजनों के पास आया। भाई-बहनों के पास आया। भाइयों ने अनादर किया, भौजाइयों ने तिरस्कार किया, बहनों ने अश्रद्धा दिखायी। तुमने भी निरादर किया। मैं निराश होकर दौड़ चला। पतंग की तरह आग की लपट में जल मरने को तैयार हो गया। मैं अपने को जलाकर राख बना डालने के लिए दौड़ता हुआ घूम रहा हूँ। मैंने आग की लपट को शान्त करने की पूरी चेष्टा की। किन्तु उससे दहन-ज्वाला शान्त नहीं हुई, वह बढ़ती ही गयी। फिर भी मैं अब स्वतन्त्र हो गया कोई भी बन्धन मुझे नहीं है। इस कलंकी, शराबी आचार-भ्रष्ट पति को तुम—"

इन्दिरा ने प्रमोद का हाथ पकड़ लिया। चुपचाप उसको अपने पास खींच लिया। उसके हाथ को अपने मुँह पर, आँखों पर रख लिया। प्रमोद के आँसुओं से उसके बाल भींगते जा रहे थे। प्रमोद की हथेली के नीचे भी जलधारा बह रही थी।

अनू और मृण्मयी एक तरफ आड़ में खड़ी थीं। दोनों ने

लम्बी साँस खींचकर आँखों से गिरने वाले आँसू को पोंछ डाला। दोनों ने यही सोच लिया कि अब सबही निरर्थक है।

भोर में ही सब लोग डर गये। बहुत पसीना निकलने से इन्दिरा का शरीर एकदम बर्फ की तरह ठंढा हो गया। यह शीतलता किसी तरह भी दूर नहीं हो रही थी। डाक्टर ने देखकर कहा—"अब दवा देने से कुछ भी लाभ नहीं। यह व्यर्थ है"

"प्रमोद एकाएक चीख उठा—"दवा दो, दो दवा ! तुमलोग क्या पागल हो गये हो। इन्दिरा अच्छी हो जायगी। वह अच्छी है। तुम लोगों का खयाल क्या है ?"

क्रमशः एक गभीर नींद से इन्दिरा की आँखें ढकती जा रही थीं। अनू के लाने से वह चौंक उठी, धीरे-धीरे कहने लगी—"दो साल तो देखते-देखते बात की बात में जायँगे, डर किस बात का है। फिर इसी तरह आकर तुमको गोद में लूँगा। तुम से क्या वे अधिक सुन्दरी हैं। देखना, तुम ही कहीं अन्त में मेरे पास आना न चाहो।"

मृणमयी ने कहा—"प्रमोद भैया तो तुम्हारे सामने है, बहू ! तुम क्या भूल गयी ?"

फिर बलपूर्वक आँखें खोलकर इन्दिरा ने कहा—"कहाँ ?"

"यहीं तो !"

मुस्कुराकर प्रमोद के पैर छूकर इन्दिरा ने उस हाथ को सिर पर रख लिया।

"इन्दु, तुम ऐसा क्यों कर रही हो ?"

"मुझे नींद आ रही है !"

गंभीर कंठ से अनू ने पुकारा—"इन्दिरा हमलोगों को छोड़कर चली जा रही हो ?"

इन्दिरा ने धीमे स्वर से कहा—"नहीं !"

मृणमयी प्रबल वेग से रोने लगी। अनू की गोद से इन्दिरा का माथा अपनी गोद में खींचकर प्रमोद पागलों की तरह चिल्ला उठा—"क्या कह रही हो तुम लोग ? नींद—नींद ! इन्दिरा को नींद आ रही है। वह क्या मुझे छोड़कर कहीं जा सकती है ? नहीं—नहीं !"

प्रमोद की बातों की प्रतिध्वनि सुनाई पड़ी—"नहीं, नहीं"

इन्दिरा हास्यपूर्ण प्रसन्न मुख लिये प्रमोद की गोद में गंभीर निद्रा में निमग्न हो गयी।
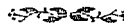
१८

प्रमोद उठकर बैठ गया। कमरे का दरवाजा खोलकर उसने देखा कि अधीर समुद्र की लहरें बालूमय तटभूमि पर बार-बार टक्कर लगा रही हैं। मानो किसी प्रबल शोकोच्छ्वास से उसका हृदय तड़प रहा है, उसकी रुलाई में क्षणभर के लिए भी कोई रोकथाम नहीं है। प्रमोद सोचने लगा, क्या इस संसार में कोई इस तरह रोना जानता है ? हृदय की वेदना को इस प्रकार क्या कोई जल में, थल में, आकाश में बिखेर सकता है ? तो मुझे अपनी वेदना व्यक्त करने में सफलता क्यों नहीं मिल रही है ?

प्रमोद का हृदय शोक के वेग से विकल हो उठा। वह अपने माथे पर हाथ रखकर फिर सोचने लगा। क्या संसार

में कोई मेरी बात सुनने वाला है, कोई भी सहानुभूति दिखाने वाला है ? यदि हो भी तो उसकी तुच्छ सहानुभूति से मुझे, क्या लाभ होगा ? इस अवस्था में तो मैं अपने कलंकित मुख को जगत् की दृष्टि से कहीं छिपा रखूँ ।

रास्ता रोककर किसी ने पुकारा—"छोटे भैया !"

दोनों हाथों से अपने कानों को दबाकर प्रमोद तेज कदम बढ़ाये एक तरफ चल पड़ा ।

उसके बाद ? उसके मस्तिष्क में रक्त का उच्छ्वास उथल-पुथल मचाने लगा । वह कई घण्टों तक बेहोशी में ही रहा । उसके बाद उसका रक्तोच्छ्वास प्रबल वेग से घट गया । थकावट से वह आत्म-विस्मृत सा हो गया । ऐसे ही समय में सहसा उसने अनुभव किया मानो किसी की कोमल गोद में उसका सिर पूर्णतः छिप गया है । ललाट पर शीतल हाथ का स्पर्श हो रहा है मानो कोई अडिकलोन की पट्टी बाँधकर उसपर रह रहकर जल सींच रहा है । उससे भी अधिक शीतल एक हाथ का स्पर्श रह-रहकर अपने ललाट पर, कपोलों पर कानों के पास वह अनुभव करने लगा । यह है कौन ? हठात् प्रमोद को बहुत दिनों की भूली हुई अपनी माता की याद आ गयी । प्रबल ज्वर रहने की हालत में माँ इसी प्रकार सेवा शुश्रूषा में लगी रहती थीं और उसकी वेदना को कम करने के लिए उसके सिर को गोद में ले लेती थीं । यह गोद तो वैसा ही स्नेहपूर्ण हैं, यह स्पर्श भी तो वैसा ही शीतल है । सब बातें धुँधली सी मालूम हो रही हैं । और किसी बात की याद नहीं आ रही है । केवल माँ की याद पड़ रही है । आज सुदीर्घ छः वर्ष के बाद जीवन के इस विपरीत परिवर्तन में प्रमोद को माँ की

याद आ गयी। उद्भ्रान्त कंठ से प्रमोद ने पुकारा—माँ।" उत्तर नहीं आया। किन्तु ललाट पर वह हाथ पुनः लौट आया। प्रमोद फिर रुँधे स्वर से बोला—"माँ, तुम क्या आ गयी? मुझे तुम देखने के लिए आयी हो?"

प्रमोद के यातनाजड़ित कंठ के प्रश्न के उत्तर में इस बार मृदु स्वर से उत्तर आया—"छोटे भैया, मैं हूँ तुम्हारी बहन अनू!"

"अनू? मेरी अनू? तो क्या अब भी इस जगत् में मेरा कोई है?" प्रमोद धीरे-धीरे उठ बैठा। विस्मय-विस्फारित नेत्रों से उसकी तरफ देखने लगा।

"अनू? तू अनू है? तो यह क्या हो गया? तेरा यह वेश कैसा?

अनू चुपचाप सिर झुकाये रही।

इधर एक दिन-रात का पूरा समय प्रमोद ने इन्दिरा के बिछौने के पास बिताया है। मृत्यु-वेदना से पीड़ित उस मुख के सिवा किसी दूसरी तरफ उसने देखा ही नहीं था। इसीलिए अनू की वैधव्यावस्था यही प्रथम बार उसकी दृष्टि में पड़ी।

प्रमोद स्तम्भित हो रहा। बोला—"तो? मैं तो अपने धैर्य हीन हठी स्वभाव के दोष से इतना कष्ट पा रहा हूँ, किन्तु तू? तेरे किस पाप से मिहिर चला गया! तो कौन कहता है कि भगवान् हैं? कौन कहता है कि वे न्यायकारी हैं...?

"छोटे भैया—भगवान् हैं—इसीलिए इन्दिरा अन्त समय में तुमको पा गयी है—मैं भी तुमको ढूँढ़ कर पा गयी हूँ। चलो, हमलोग यहाँ से किसी दूसरी जगह जाकर रहें। दोनों भाई-बहन अन्यत्र बस जायँ। चलो यहाँ से छोटे भैया।"

"अनू, अनू, अब नहीं। अब मैं किस आशा से लौटूँगा?

किस लिए लौटूंगा ? जिस दिन मेरा सब कुछ था, उस दिन भ्रम से अंधा होकर मैं चला आया था—उस दिन मुझे किसी ने क्यों नहीं बचाया ? आज फिर क्यों ?"

तुम सब जानते हो भैया, फिर वह बात नहीं। आज तो तुम्हारा भी कोई नहीं है। मेरा भी कोई नहीं है, छोटे भैया। अपनी इन्दिरा की बातें याद करके इस रास्ते से लौट चलो। इस काम से वह स्वर्ग में भी सुखी होगी।"

प्रमोद अनू की तरफ स्थिर दृष्टि रख कर सोचता रहा, फिर बोला—"सुखी होगी ? तुम बता सकती हो ? होगी ?"

"हाँ, अवश्य ही। वह तो कह कर गयी है। हमलोगों को वह छोड़ेगी नहीं। वह हम लोगों के पास रहेगी, किन्तु तुम इसी तरह रहोगे तो उसकी आत्मा क्या देखकर कष्ट न पावेगी ?"

"ठीक अनू, ठीक कहती हो। तुम्हारे पुण्य के प्रताप से वह तुम्हारे ही पास रहेगी ! वह तो वहीं पर सो रही है ! चलो चलो अनू, तुम अपने ही पास मुझे ले चलो। किन्तु मैं तो जातिच्युत हो गया हूँ, समाज से बहिष्कृत हूँ, मुझे लेकर अनू तुम—"

"हमलोग तो भाई-बहन हैं छोटे भैया ! हम दोनों के सिवा हमलोगों का और है ही कौन ? जाति ही क्या है—समाज भी क्या है ?

"तो चलो।"

इन्दिरा की मृत्यु के बाद छः मास बीत जाने पर प्रमोद काशी से मनीश को पत्र लिख रहा था—

"प्रिय मणि"

पन्द्रह दिन हुए, तुम्हारा पत्र मुझे मिला था। उत्तर देने में

देर हुई, इसके लिए नाराज मत होना। मैं अपने स्वार्थ के लिए तुमको पत्र लिखता हूँ, तुम्हारे लिए तो तुमको मैं पत्र नहीं लिखता। इसी कारण जब जैसा रहता हूँ, तब उसी तरह मेरा पत्र तुमको मिलता है। मेरी बात सुनने वाला तुम्हारे सिवा और कौन है बताओ।

है—मेरी दुःखिनी अनू है। मुझे अब भी सुखी करने के लिए, शान्ति-सान्त्वना देने के लिए अपने प्राण को ही उसने उत्सर्ग कर दिया है। किन्तु अब उसके शोकार्त्त हृदय पर मैं अपना भार रखना ठीक नहीं समझता, इसीलिए उसके सामने मैं जिस बात को छिपा रखता हूँ, वही तुम्हारे सामने खोलकर जरा चैन की साँस लेना चाहता हूँ।

भार,—यह भार बहुत बड़ा है मणि! जब अपने जीवन को नखनख से चीर कर देखता हूँ—उः, मैं खुद ही सिहर उठता हूँ। जगत् में किसीको ऐसी चीज मिली थी? किसी की ऐसी चीज खो गयी है? किसी को ऐसा निरादरपूर्ण प्रत्याखान मिला है? फिर कौन ऐसा मूढ़ है? तुम झूठमूठ ही दूसरों के साथ मेरी तुलना करते हो? तुम जब कि मेरा सब कुछ जानते हो, ऐसा तो दूसरा कोई नहीं जानता। सोच कर देखो तो, मेरा जीवन कितना उच्छृङ्खल है। किसी एक विषय में क्या तुमने मुझे स्थिर देखा है, कितने रास्ते मैंने पकड़े, कितना व्याकुल होता रहा, किन्तु दूसरी तरफ के साधारण धक्के को मैं सम्हाल न सका। यौवन के प्रारम्भ में मैं कवि बन रहा था, कैसा लड़कपन था, वह क्या तुमको कुछ-कुछ याद है? किन्तु वह इच्छा भी शायद अच्छी ही थी। किन्तु किस अशुभ क्षण में मैं समाज-सुधारक बनने गया था। तभी से जीवन में कैसी उच्चाकांक्षा प्रवेश कर

गयी। देश के दस आदमियों में एक प्रसिद्ध मनुष्य बनने के लिए मैंने और किसी तरफ अपनी दृष्टि नहीं डाली। मैंने आन्तरिक दुर्बलता की तरफ एक बार भी दृष्टि न रखकर क्यों इतना बड़ा साहस किया। किसलिए विलायत चला गया! देश में ही डाक्टर बनकर क्या मैं देश का काम नहीं कर सकता था? यदि इतना बड़ा ऊँचा व्रत लेने की शक्ति मुझमें रहती तो आत्मीय स्वजनों और पत्नी इन्दिरा का प्रत्याख्यान पाकर भी मैं क्यों खुद पवित्र भाव से नहीं रहा? जिस व्रत की ऊँची आशा लेकर सब छोड़कर मैं चला गया था, उसी महत व्रत को मैंने क्यों नहीं पकड़ रखा? उच्छृङ्खलता का रास्ता मैंने क्यों पकड़ लिया? जिसकी आत्मा ऐसी डरपोक है—'जो अपनी सुखशान्ति का अभाव होने पर समूचे संसार को तृणवत् समझने लगता है, वह क्या कभी देश-हित-व्रत के लिए उपयुक्त हो सकता है? अपने को न पहचान कर ही इतनी बड़ी भूल करके मैंने दो जनों के जीवन किस तरह नष्ट कर डाले हैं।

मेरे स्वजन गण कभी मेरे ऊपर खुश नहीं थे। मैं भी उनसे खुश नहीं था। किन्तु दो वर्ष तक आत्मीयविहीन प्रवास में रहकर मेरा वह भाव बदल गया था और उन लोगों के लिए भी मैं कैसा तृषित हो उठा था, वह बात मैं इतने दिनों के बाद कैसे बतलाऊँ? किन्तु जब कि मैं सबही बतलाने के लिए तैयार हूँ, तब इसको भी सुन लो। वह अत्यधिक स्नेह ही शायद मेरे सत्यानाश का मुख्य कारण बन गया। कलकत्ते में मनो बहन के यहाँ मेरा अनादर हुआ। बड़े भैया और बड़ी भाभी से अद्भुत व्यवहार मिला। आज भी उसकी याद आने से मुझे हँसी आ रही है! मनुष्य को मनुष्य ऐसी घृणा कर सकता है? भाई

शिक्षा के लिए विलायत चला गया, तो यह क्या कोई अपराध था ? उस समय मेरा हृदय ऐसा विद्रोही हो उठा था कि इन्दिरा के सम्बन्ध में भी मैं मन ही मन ऐसी ही आशंका लेकर विद्रोह की चरम सीमा तक पहुँच गया था। इन्दिरा को लगातार कई पत्र लिखने पर भी जब कोई उत्तर नहीं मिला तो क्रमशः मेरे मन में सन्देह की जड़ जम गयी। कौन जानता था कि उसके माँ-बाप ने मेरे पत्रों को नष्ट कर डाला है। तो भी उसके साथ मेरा जो थोड़ा-सा परिचय हुआ था, उसको जिस हद तक मैं समझ सका था, उन्हीं दो दिनों कि सुखस्मृति के जोर से मैं अपनी दुर्बलता की एक अकल्याण मूर्ति को विलायत में ठुकरा कर चला आया था ! किन्तु यहाँ आने पर जब मुझे विश्वास हो गया कि इन्दिरा मुझे नहीं चाहती तब मैं आत्म-रक्षा न कर सका। मेरा रक्षाकवच ही टूट गया हम दोनों ही एक दूसरे के बारे में जिस डर से डरते रहे, वह आन्तरिक रूप से तो नहीं; पर बाह्य रूप से सच ही निकला। मैंने भी स्वेच्छा से क्लोरा के सामने अपने को सौंप दिया था। मेरे दुर्भाग्य से वह भी उसी समय विलायत से इस देश में आ गयी थी। विलायत में मैंने अपने को अविवाहित कह कर अपना परिचय दिया था।

यहाँ इन्दिरा ने भी, जैसा कि मैंने बताया है, एक तरह से मुझे त्याग दिया। यह क्या विधाता का परम रहस्य नहीं है शायद तुमको याद हो, अपने जीवन के बीच कुछ दिन मैंने अपने देश की स्त्रियों को घृणा की दृष्टि से देखना शुरू किया था। किन्तु मैंने यह नहीं समझा था कि हमारे घरों में ही अपार्थिव नारीरत्नों की संख्या कम नहीं है। इन रत्नों में जो कुछ त्रुटियाँ

हैं यदि हमलोग उनको ठीक कर सकते, तो कितना कल्याण होता! मेरे घर में भी ऐसी ही नारी थी। अनुचित लज्जा के कारण ही उसे जीवन में असहनीय कष्ट भोगना पड़ा। उसका मूढ़ पति जब कि उसकी स्वाभाविक लज्जा का मूल्य न समझकर चला गया था तब वह केवल मकान के एक कोने में किंकर्तव्य-विमूढ़ होकर पड़ी रही। यदि वह ऐसा न करके एकबार—

हाय मणि! मैं अभीतक उसके ही आचरण का विचार कर रहा हूँ। वह यदि मुझे बुला न सकी, मेरे साथ चली नहीं आयी तो निस्सन्देह उसने बड़ी भूल की। किन्तु मैंने क्या किया? मेरा किसी ने स्वागत नहीं किया, इसी कारण मैं नरक के मार्ग से ही चलूँगा, यह मेरी कैसी मूढ़ता थी! इन्दिरा मुझे प्यार नहीं करती, किन्तु क्लोरा तो करती है, इसलिए उसके ही साथ क्यों न जीवन बिताऊँ? उसका प्यार तो मुझे मिल चुका है। हाय! ऐसा ही दुर्बल हृदय लेकर मैंने देश का सुधार करने को अग्रसर होना चाहा था!

किन्तु यह भी रहस्य देखो क्लोरा भी तो मुझे अपने साथ न रख सकी। वह तो बन्धन में पड़ी रहने वाली नहीं है! मुझे जीत लेना ही उसका उद्देश्य था। जीतकर, पदानत करके जब उसने देख लिया कि, इसके अन्दर तो केवल राख ही भरी हुई है—थोड़ी सी भी आग नहीं है, यह केवल मदिरा पीकर बेहोश होकर पड़ा रहना ही जानता है, तब दो ही दिनों में उसने भी मुझे छोड़ दिया। मैं भी बच गया, वह भी बच गयी।

किस कारण मुझे ऐसा भ्रम हो गया था मणि? किस कारण पतिप्राणा इन्दिरा का जीवन मैंने नष्ट कर डाला? उसने तो मेरे लिए अपना जीवन दे डाला और मैंने क्या किया? मैंने तो

अनायास ही उसको छोड़कर अन्य स्त्री को अपना लिया था। फिर मैंने क्यों अपने को इस अवस्था में डाल दिया था। किसको भूलने के लिए मैंने इस तरह मदिरा का आश्रय लिया था!

सुनो, तुमको याद होगा, प्रथम यौवन में, कालेज की पढ़ाई आरम्भ करते समय मैंने कविता रचना शुरू की थी, उस समय की कविता की एक कापी इन्दिरा की मृत्युशय्या पर मुझे मिली है। इसमें मेरी, उच्छृङ्खल-शीर्षक कविता मौजूद है। इसमें मैंने अपने जीवन का भावीचित्र पहले ही अंकित कर दिया था।

हाय देवि! मैंने तुमको पहचाना नहीं।

यह पत्र बहुत लम्बा हो गया। आशा है, तुम अच्छी तरह हो। मिहिर की माँ के लिए मेरा यह काशीवास है, किन्तु इस तरह मैं यहाँ बहुत दिन रह सकूँगा, ऐसी आशा मुझे नहीं है।

इति—

तुम्हारा प्रमोद।"

१९

मनीश सदा से ही संयत शान्त स्वभाव का था! विवाहित जीवन भी उसका सुख से बीत रहा है। स्त्री-पुत्र समेत उसकी गृहस्थी अच्छी तरह चल रही है। व्यवसाय में भी उसकी उन्नति हुई है। आर्थिक अवस्था अच्छी है। फिर भी प्रमोद की चिन्ता में वह बराबर उदास रहता है। इधर कुछ दिनों से उसको प्रमोद का कोई समाचार नहीं मिला है। इस कारण वह कुछ घबड़ाहट में पड़ गया है।

प्रतिदिन वह प्रमोद की चिट्ठी की प्रतीक्षा कर रहा था। एक दिन उसकी इच्छा पूरी हो गयी। प्रमोद की चिट्ठी उसे मिल गयी। प्रमोद ने लिखा था—

"प्रियवर,

हमलोग इधर कई महीनों से पुरी में रह रहे हैं, तुमको मालूम हो चुका है कि मिहिर की माता का देहावसान हो चुका है और वे अपने प्रियपुत्र के साथ मिल गयी हैं। अब हम लोगों ने यहाँ ही बस जाने का निश्चय कर लिया है। मैं हूँ बहन अनू है, और मिनू भी है उसके पति आशु बाबू भी हैं। आशु बाबू का साथ मिल जाने से मेरा बहुत उपकार हो रहा है, और मिनू के बारे में क्या बताऊँ? उसका स्नेह तो अनू की ही तरह है। मेरे प्रथम जीवन की अभिज्ञता एकदम झूठी नहीं है भाई! मिनू सचमुच ही मुझे प्यार करती है। इससे अधिक उसने अपने सगे भाई को भी कभी प्यार नहीं किया। अनू-मिनू के स्नेह से मैं फिर मनुष्य समाज में आ सका हूँ।

अनू की प्रेरणा से मैं मनुष्य बन रहा हूँ। मैंने डाक्टरी शुरू कर दी है। इस स्वास्थ्यकर स्थान में कितने ही रोग-पीड़ितों को मेरे पास लोग ले आते हैं। मैं यथाशक्ति उनको जीवन देने से बाज नहीं आऊँगा। मिनू कहती है और आशु बाबू भी कहते हैं कि इस समुद्र तट पर इन्दिरा की स्मृति-रक्षा के लिए कोई काम करना चाहिये। किन्तु क्या करना चाहिये? क्या पत्थर की मूर्ति स्थापना से काम बन जायगा? उसमें इन्दिरा का कोई चिन्ह रहेगा? उसके हृदय का रहेगा, बाहर का रहेगा या किस बात का रहेगा? रहेगा केवल मेरे मन का अहंकार। इसकी कोई जरूरत नहीं है।

प्रतिदिन प्रातःकाल और शाम को हमलोग समुद्र के किनारे टहलते हैं। अनेक बातें होती हैं, अनेक आलोचनाएँ होती हैं। समय अच्छी तरह बीत जाता है।

मैं पुनः अपने प्रथम यौवन को पा रहा हूँ मनीश! मैं अमावस्या के अन्धकार में समुद्र का शोकोच्छ्वास सुनता रहता हूँ। उसके अशान्त हृदय की उथल-पुथल, असीम चंचलता, उसकी उछल कूद मैं देखता रहता हूँ।

धीरे-धीरे मैं सुखी होता जा रहा हूँ भाई! आशा है कि मैं फिर कविता लिखने लगूँगा। फिर अनू-मिनू ही श्रोता और बोद्धा का पद पावेंगी।

मैं जिस कार्य में लगा हूँ भाई, वह कम आनन्ददायक नहीं है। रोगियों की वेदना कुछ भी शमन करने, उनके लिए आहार-निद्रा छोड़ देने में भी तो कम आनन्द नहीं है। क्या यही आनन्द मनुष्य के लिए प्रार्थनीय नहीं है भाई?

किसने मुझे यह नवजीवन प्रदान किया है? तुम कहोगे इन्दिरा के प्रेम ने; किन्तु केवल यही नहीं है, और भी कुछ है। हृदय में है इन्दिरा के प्रेम की स्मृति, और बाहर है मेरी अनू का स्नेह-आदर्श। ये ही मुझे धीरे-धीरे सुख के राज्य की ओर ले जा रहे हैं। इन दोनों नारियों के प्रभाव से ही मेरा जीवन क्रमशः मनुष्य की तरह उज्ज्वल होता जा रहा है। अपने जीवन की इन अधिष्ठात्री देवियों के पुण्यनाम तुमको भी बताकर मैं आज के लिए छुट्टी लेता हूँ।

तुम्हारा प्रमोद।

❀ समाप्त ❀